कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

हिन्दुस्तान की समस्याएँ

वर्तमान समस्याओं पर अनूठी पुस्तक

लेखक—महात्मा गांधी

प्रकाशक-

काशी-पुस्तक-भण्डार, चौक, बनारस

प्रथम बार १०००] १९४७ ई० [मूल्य १॥)

पढ़ने योग्य पुस्तकें

१	कांग्रेस का इतिहास सचित्र ले० कांग्रेस के नेता और विद्वान	२॥)
२	कुत्सित जीवन ले० म० गांधी	१॥)
३	खून का बदला खून से नहीं ले० महात्मागांधी	१॥)
४	ब्रह्मचर्य की महिमा	१॥)
५	गीताञ्जलि पद्यात्मक—रवीन्द्रनाथ ठाकुर	४)
६	नारी-धर्म-शिक्षा-मनव्रता देवी	१।)
७	दहेज-सामाजिक उपन्यास	२॥)
८	कन्या शिक्षा दर्पण	॥)
९	आज़ाद हिन्द फौज का इतिहास	२)

पुस्तक मिलने का पता—
चन्द्रबली सिंह
स्वदेश-पुस्तक-एजेन्सी
बुलानाला, बनारस

मुद्रक—
श्रीनाथदास अग्रवाल
टाइमटेबुल प्रेस, बनारस।

दो शब्द

हिन्दुस्थान में हुए एशियाई सम्मेलन (मार्च १९४७ ई०) में आये चीनी प्रतिनिधि डा० हाडलिऊ के शब्दों में महात्मा गांधी 'भारत की आत्मा, एशिया की ज्योति और संसार के महापुरुष हैं', अतएव ऐसे महानात्माऔर तपस्वी सत्य वक्ता महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी के मुख से निकला प्रत्येक शब्द अकाट्य और संसार में सदा अमर रहनेवाला है, यह बात किसी हिन्दुस्थानी से छिपी नहीं है। वर्तमान उथल-पुथल के युग में 'हिन्दुस्तान की समस्याएँ' नाम से उन्हीं महात्मा के हृदयोद्‌गार पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। पुस्तक के सम्बन्ध में हमें कुछ कहना नहीं है। विषय पुस्तक के नाम से ही प्रकट है। साथ ही इसमें पूर्वी बंगाल और बिहार की पैदल यात्रा की डायरी दे दी गई है जिसमें पाठकों को देश की स्थिति और परिस्थिति के संबंध में बहुत बड़ी सामग्री मिलेगी।

अन्त में हरिजन सेवक (हिन्दी) पत्र के हम बड़े ही कृतज्ञ हैं, जिसकी कतरनों से यह पुस्तक बन सकी है।

चैत्र शुक्ल रामनवमी
विक्रमी सं० २००४

सूर्यबली सिंह

विषय-सूची

शीर्षक — पृष्ठ

हिन्दुस्तान की समस्याएँ

हिन्दू पानी और मुसलमान पानी

जब कोई परदेसी आदमी हिन्दुस्तान की रेलगाड़ियों में सफ़र करते वक्त अपनी ज़िन्दगी में पहली बार पानी, चाय और ऐसी ही दूसरी चीज़ों के साथ हिन्दू या मुसलमान की हँसी लानेवाली पुकारें सुनता होगा, तो उसे सहज ही एक दर्द भरा धक्का-सा लगता होगा। चूँकि अब केन्द्र में पूरी-पूरी क़ौमी-सरकार बन गई है, और आसफ़अली साहब जैसे मशहूर हिन्दुस्तानी, रेलवे और यातायात विभाग के वज़ीर हैं, इस चीज़ का बना रहना बहुत भद्दा मालूम होगा। हमें उम्मीद करनी चाहिए कि यह शर्मनाक चीज़, जो सिर्फ़ हिन्दुस्तान की अपनी ख़ासियत है, बहुत जल्द ख़त्म कर दी जायगी। कोई यह न सोचे कि चूँकि रेलें एक मुसलमान के मातहत हैं, इसलिये हिन्दुओं के साथ इन्साफ़ न होगा। केन्द्रीय (मरकज़ी) या सूबों की सरकारों में हिन्दू-मुसलमान का या दूसरा कोई क़ौमी भेदभाव न होना चाहिये। सभी हिन्दुस्तानी हैं। मज़हब तो एक निजी मामला है। इसके सिवा, हमारी कैबिनेट के मेम्बरों ने एक बहुत अच्छा सिलसिला चला दिया है। अपने दिन भर के काम के बाद वे सब रोज़ शाम को मिलते हैं, और किसने क्या किया है, इस पर ग़ौर करते हैं। यह एक मिलाजुला काम है, जिसमें सब मेम्बर एक साथ और अलग-अलग एक दूसरे के काम के लिए ज़िम्मेदार हैं। कोई मेम्बर यह नहीं कह सकता कि चूँकि कोई ख़ास चीज़ उसके महकमे से ताल्लुक़ नहीं रखती, इसलिए

वह उसके लिए ज़िम्मेदार नहीं। चुनाँचे हमें यह मानकर चलने का हक़ है कि रेलवे स्टेशनों पर हर क़ौम के लिए हर चीज अलग से बेचने का यह नापाक तरीका बन्द कर दिया जायगा। सफ़ाई का पूरा-पूरा ख़याल रखने का उसूल तो सब के लिए ज़रूरी है। अगर सब तरह की पनीली या तरल चीज़ों के लिए टोंटियोंवाले बरतनों का इन्तज़ाम रहे, तो उनसे अपनी ज़रूरत की चीज़ें खुद ले लेने में किसी पुराने ख़याल के आदमी को भी कोई परहेज़ न होना चाहिये। जो बहुत परहेज़ी हैं, वे अपना प्याला या लोटा अपने साथ रखें, और उसी में दूध, चाय, कॉफ़ी या पानी टोंटी से ले लिया करें, इस में तो किसी का मज़हब नहीं बिगड़ता। फिर, रेलवे-स्टेशनों पर चीज़ें ख़रीदना किसी के लिए लाज़िमी नहीं। असल में बहुत से पुराने ख़याल के लोग तो सफ़र में न पानी पीते हैं, न खाना खाते हैं। वे उपासे रह लेते हैं। ग़नीमत है कि हम अभी एक ही हवा खाते हैं, और एक ही धरती माता पर चलते फिरते हैं।

कम-से-कम रेलवे-स्टेशनों पर तो ये सब क़ौमी पुकारें ग़ैरकानूनी कर दी जानी चाहियें।

जैसा कि मैंने इन पन्नों में कई दफ़ा कहा है, रेलगाड़ियों और जहाज़ों के ज़रिये असली तौर पर लाखों-करोड़ों मुसाफ़िरों को हद दरजे की सफ़ाई, सेहत और तन्दुरुस्ती के नियम सिखाये जा सकते हैं, और हिन्दुस्तान की अलग-अलग जातियों में भाईचारा भी पैदा किया जा सकता है। हम उम्मीद करें कि इस बहुत जरूरी सुधार को सफल बनाने में कैबिनेट या मंत्रि-मण्डल अपने अक़ीदे (विश्वास) के मुताबिक़ काम करने की हिम्मत दिखायेगा, और उसे रेलवे के कारकूनों और आम जनता की भी पूरी-पूरी और दिली मदद मिलेगी।

सच्चा हिन्दुस्तान

मैं सारे हिन्दुस्तान के गाँवों में घूमा हूँ। अगर उनके बारे में जानकारी हासिल करने में मुझे धोखा नहीं हुआ है, तो मैं इतमीनान से कह सकता हूँ कि सात लाख गाँवों को न तो पुलिस के जरिये बचाव मिलता है, और न उन्हें उसकी ज़रूरत ही है। अकेला पटेल ही, जो माँ-बाप सरकार या लगान वसूल करने में 'कलेक्टर' की मदद करता है, उन पर हुकूमत करने वाला ज़ालिम हाकिम है। मैं नहीं जानता कि गाँव में डाका पड़ने पर कभी पुलिस ने गाँव वालोंके माल असबाब की और जानवरों की हिफ़ाज़त करने में उनकी मदद की हो, या जंगली जानवरों से उन्हें बचाया हो। पटेल की इस हालत के लिये आज उसे दोष नहीं दिया जा सकता। जिस काम के लिये उसे रखा गया है, उसे वह बखूबी करता है, उसे यह सिखाया ही कहाँ गया है कि वह अपने को लोगों का खिदमतगार समझे? वह तो अपने मालिक वाइसराय का नुमाइन्दा है। ऊपर केन्द्र में जो रद्दोबदल हो गया है, वह अभी नीचे गाँवों तक नहीं पहुँचा। और पहुँचे भी कैसे? वह फ़र्क़ नीचे से थोड़े ही किया गया है? वाइसराय के पास आज भी वह क़ानूनी और फ़ौजी ताकत है, जिसके ज़रिये वे चाहें तो अपने वज़ीरों को हटा सकते हैं और गिरफ्तार भी करवा सकते हैं। वाइसराय को गिरफ्तार करने के लिये वज़ीरों के पास कोई कानूनी या दूसरी ताक़त नहीं। अभी तो सिविल सर्विस भी वाइसराय के ही मातहत है। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि वाइसराय अपने अधिकारों को छोड़ना नहीं चाहते, या हिन्दुस्तान के दूर-से-दूर के देहातियों को यह महसूस नहीं करने देना चाहते कि उन्हें (वाइसराय को) इँग्लैण्ड के सरकारी दफ्तर से यह हिदायत मिली है कि वे जल्दी-से-जल्दी हिन्दुस्तान से अंग्रेज़ी हुकूमत को पूरी तरह उठा लें।

यह सब लिखने का मतलब यह है कि हम अभी तक अपने देहात

से, जहाँ असल हिन्दुस्तान रहता है, यह सबक़ नहीं सीखते कि हरएक हिन्दुस्तानी, चाहे वह मर्द हो या औरत, खुद अपना पुलिसमैन है। यह काम वह तभी कर सकता है जब वह अपने पड़ोसी को, चाहे वह किसी धर्म को मानता हो, नुक़सान पहुँचाने का ख़याल छोड़ दे। अगर बदक़िस्मती से कोई सियासी दिमाग का आदमी यह न कर सके, तो उसे इतना तो करना ही चाहिये कि वह अपने दिल से सारा खौफ़ निकाल दे, और अपनी हिफ़ाज़त के लिये पुलिस या फौज की मदद लेने से साफ इनकार कर दे। मेरा यह पक्का ख़याल है कि जब तक हमारा हर एक घर अपने आप में एक क़िला नहीं बन जाता, तब तक हिन्दुस्तान अपने पैरों खड़ा न हो सकेगा—पूरी तरह आज़ाद न बन सकेगा। यह क़िला तवारीख के काले ज़माने का क़िला न होगा, वरन् उस बहुत पुराने ज़माने का क़िला होगा, जब हर इनसान दूसरे के खिलाफ बुरे ख़याल रखे बिना मर जाना जानता था, यानी मरते वक्त वह अपने दिल में यह ख़याल भी न रखता था कि चूँकि वह खुद अपने हत्यारे को नहीं मार सकेगा, इसलिये दूसरा कोई उसे ज़रूर मार डालेगा। काश, यह सबक़ हम सबके दिलों में अच्छी तरह अंकित हो जाय! इस सबक़ के पीछे काफ़ी सुबूत हैं। कोई उसकी जाँच करने की तकलीफ भर उठाने वाला हो।

सवाल-जवाब

पोशाक एक-सी कर दी जाय

"इन पिछले चार हफ्तों में मैंने इतनी खूँरेज़ी और गोलीबार देखा है कि मेरे दिल पर उसका बुरा असर रह गया है। जब से दंगा शुरू हुआ है, मैंने मजिस्ट्रेट के नाते रोज़ शान्ति कायम करने की कोशिश की है। अब मैं पहले से ज्यादा इस बात का क़ायल हो गया हूँ कि हर एक हिन्दुस्तानी एक ही तरह की राष्ट्रीय या कौमी पोशाक पहने। आपको

याद होगा कि मैंने पहले भी यह बात उठाई थी, पर उस वक्त आपने इसे पसन्द नहीं किया था। क्या वजह है कि शर्ट और पैण्ट पहनने वाला एक भी आदमी छुरेबाजी का शिकार नहीं हुआ? इससे यह साफ़ तौर से साबित होता है कि पोशाक मज़हब के भेद को और बढ़ा देती है। अगर आप 'हरिजन' में इसका जवाब देंगे, तो मेरे-जैसे कई लोगों को, जो सोचते हैं कि एक-सी पोशाक पहनने से कौमी दंगे कुछ ही दिनों में बिलकुल बन्द हो जायँगे, उससे खुशी होगी।"

एक बहुत विद्वान् और नेकदिल दोस्त का यह खत मैं छाप रहा हूँ। जिसमें ये तीनों गुण हों, यह ज़रूरी नहीं कि उसके विचार भी सुलझे हुए हों। आज हमें एक-सी पोशाक की ज़रूरत नहीं, ज़रूरत है, एक-से दिलों की। पोशाक को एकता आज के इस झमेले से निकलने में हमारी मदद करेगी, इस दलील के खोखलेपन को समझने के लिये आज के यूरोप की हालत पर निगाह डालना काफी होगा। दिलों का दुराव एक ज़हरी हवा है। यह दुराव मिटना चाहिये, और उसकी जगह सद्भाव की साफ और ताज़ी हवा बहनी चाहिये।

तम्बाकू की बुराई

स०—शराबबन्दी के हक़ में तो आप अक्सर बहुत ज़ोर देकर लिखते रहे हैं, लेकिन बीड़ी या तम्बाकू पीने के बारे में आपने उतना ही या उसी तरह के ज़ोरदार शब्दों में कभी नहीं लिखा। यह बुराई बहुत चौंकाने वाली तेज़ी से फैल रही है, और बच्चे भी बढ़ती तादाद में इसके आदी बनते जा रहे हैं। आज तम्बाकू पीने में जो करोड़ों रुपये सचमुच फूँक दिये जाते हैं, वे हमारे इस ग़रीब मुल्क में अच्छे कामों के लिये बहुत अच्छी तरह खर्च किये जा सकते हैं।

ज०—यह उलाहना सही है, पर नया नहीं। मैंने इस पर ज़ोर देकर ज्यादा नहीं लिखा, उसका सबब यही समझा जाय कि तम्बाकू पीने

की आदत एक चौंकानेवाले रूप में बड़प्पन की निशानी बन गई है। जब कोई व्यसन या बुराई इस हद तक पहुँच जाती है, तो उसे उखाड़ फेंकना मुश्किल हो जाता है। इसका यह मतलब नहीं कि हम इस बुराई के खिलाफ़ आवाज़ ही न उठायें। सवाल यही है कि यह सब कब और कैसे किया जाय ? मैं अफ़सोस के साथ क़बूल करता हूँ कि इसका जवाब मुझे सूझ नहीं रहा है।

दहेज का शाप

स०—ब्याह-शादी में दहेज की माँग दिन-दिन बढ़ती जा रही है। इस अन्याय से कोई बचा नहीं। लड़के के पिता जितने धनी होते हैं, दहेज की माँग भी उतनी ही बढ़ जाती है। यह सवाल आज इतना टेढ़ा बन गया है कि शादी के लायक़ लड़कियों की शादी नहीं हो पाती। इन लड़कियों के माँ-बाप की हालत का बयान करने के बजाय उसका अन्दाज़ा लगा लेना ज़्यादा आसान है। सूबों की लोकप्रिय सरकारों को चाहिये कि वे क़ानून बनाकर इस बुराई को रोकें।

ज०—इन भाई ने एक अजीब चीज की तरफ इशारा किया है। शिक्षा या तालीम समाज की इस हालत को न सिर्फ़ सुधारती नहीं, बल्कि ज्यादा बिगाड़ती है। जिन लोगों में यह बुरा रिवाज मौजूद है, उन्हें वक्त रहते चेत जाना चाहिये, वरना यह उन लोगों को ही खत्म कर देगा, जो अपनी भयंकर कमजोरी की वजह से बेशरम बन कर इससे चिपके हुए हैं। उन्हें लगातार बिना चैन लिए इसके खिलाफ़ आन्दोलन करते रहना चाहिये। दूसरा कोई तरीक़ा मैं नहीं जानता।

हिन्दुस्तान में डेरी का धन्धा

डॉ० पेपराल ने पिछले साल 'हिन्दुस्तान में डेरी का धन्धा' नाम की एक रिपोर्ट लिखी थी। गहराई के साथ ग़ौर करने लायक उसकी कुछ बातें नीचे दी जाती हैं। उनमें से ज्यादातर ऐसी हैं, जो पहले 'हरिजन' में छपी नहीं हैं।

यह सवाल कितना बड़ा है, सो नीचे दिये गये आंकड़ों से साफ़ मालूम हो जायगा—

दूध पैदा करनेवालों की तादाद गाँवों में २ करोड़ १० लाख और शहरों में १ लाख ८० हजार है।

हिन्दुस्तान में दूध देनेवाले मवेशी दुनिया की कुल तादाद के एक तिहाई यानी २१ करोड़ ९० लाख हैं।

किसी तरह दूध के ग्राहकों की तादाद ४० करोड़ है।

डॉ० पेपराल शुरू में ही यह मान लेते हैं कि हिन्दुस्तान में गाय के सवाल पर ग़ौर करते वक्त गाँवों को ध्यान में रखना चाहिये। हिन्दुस्तान की जरूरतें यूरोप से जुदा हैं; मसलन, यहाँ गाय को हमेशा दोहरी जरूरतें पूरी करनी होंगी।

१—दूध पैदा करने के बारे में वे इन नतीजों पर पहुँचे हैं—

(अ) गाय को खेती के लिये बैल पैदा करने और दूध देने का दोहरा फ़र्ज़ अदा करना पड़ता है। इसलिये भैंस गाय की जगह नहीं ले सकती। वह गाय के काम में मदद ही पहुँचा सकती है।

(आ) दूध बढ़ाने का काम, बाहर से साँड मँगाने के बजाय यहाँ के साँडों की नस्ल सुधार कर ही, पूरा करना होगा। तजरबे से यह मालूम हुआ है कि परदेसी साँडका संकर अच्छा नहीं होता। सेवाग्राम में गौलाऊ सांड से नस्ल सुधारने का जो काम हो रहा है, उसे डॉ० पेपराल ने पसन्द किया है। उनकी एक सिफ़ारिश यह भी है कि सरकारी फार्मों

में पले-पुसे साँड़ चुनी हुई नस्लों के होने चाहियें। और, जहाँ तक उनकी सार-सँभाल और उनके इस्तेमाल का सवाल है, उन्हें काफ़ी जानकार लोगों की देख-रेख में रखना चाहिये।

(इ) अगर यह मान लिया जाय कि हिन्दुस्तान के गाँवों की हालत कम-से-कम अगले दस साल तक थोड़े फेर-फार के साथ आज-जैसी ही बनी रहेगी, और सिंचाई व खेती के लिये, और एक जगह से दूसरी जगह सामान लाने-ले जाने, और सवारी वग़ैरह के लिये बैलों की जरूरत होगी, तो गाय को अपना दोहरा काम करते ही रहना होगा।

२—रिपोर्ट में मवेशी को ठीक से खिलाने पर काफ़ी ज़ोर दिया गया है। डॉ॰ पेपराल कहते हैं—"अगर मवेशीको वैज्ञानिक (सायन्सदानी) तरीक़े से खिलाने के माप पर ग़ौर किया जाय, तो यही कहा जायगा कि हिन्दुस्तान के ज्यादातर मवेशी भूखों मर रहे हैं।"

(अ) मवेशी को ठीक ढंग से खिलाने-पिलाने के बारे में गाँववालों को तालीम दी जानी चाहिये। यह भी एक शास्त्र (सायन्स) है।

(आ) लूसर्न घास से बरसीम घास मवेशी को ज्यादा फ़ायदा करती है, मगर उसकी ख़ूबियों पर काफ़ी तवज्जह नहीं दी गई है।

(इ) छोटेसे मैदान में बहुत से मवेशियों को चरने के लिये छोड़ देने के बजाय चरागाहों पर उगी हुई घास को काट लेना ज्यादा अच्छा है। जब हरा चारा मिलता हो, तो खली, बिनोलों और दूसरी ऐसी चीज़ों का कम इस्तेमाल किया जाना चाहिये।

३—मवेशियों के इन्तजाम पर ठीक से ध्यान नहीं दिया जाता।

(अ) "दूध देनेवाले मवेशियों की हालत काफ़ी बुरी है, मगर दूध न देनेवाले मवेशियों पर तो बिलकुल ध्यान नहीं दिया जाता।" इसका इलाज यही है कि ढोरों के चरने की जगह बढ़ा दी जाय, और उनके खाने की चीज़ों की निकासी पर रोक लगा दी जाय। मवेशी के मालिकों को ज्यादा चारा-दाना ख़रीदने लायक बनाने के लिये माली ज़रिये खोज

निकालने होंगे। दूध का बहुत-सा नुकसान तो इसलिये होता है कि यहाँ मवेशियों को लम्बे अरसे तक बच्चे पैदा नहीं करने दिये जाते।

(आ) दूसरे मुल्कों के तजरबे के बाद डॉ० पेपराल हिन्दुस्तानियों के इस दावे को नहीं मानते कि पैदा होने के एक या दो दिन बाद ही बछड़ों का दूध नहीं छुड़वाया जा सकता। चूँकि बछड़ों की परवरिश के लिए और चीज़ें मिल सकती हैं इसलिये उनका दूध जल्दी-से-जल्दी छुड़ा देने के रिवाज को बढ़ावा दिया जाना चाहिये।

(इ) दूध पैदा करनेवालों को दूध का काफ़ी दाम मिलना चाहिये। आज तो दूध के भाव में फ़ी मन रु० १०) से लेकर ३०, तक घट-बढ़ होती रहती है। इसका कोई ऐसा इलाज करना चाहिये, जिससे आम लोगों में दूध के भाव के बारे में इतमीनान पैदा हो।

४—दूध पैदा करने के साधनों में काफ़ी साफ़, हवादार और पक्की फ़र्शवाली परछियाँ ज़रूरी हैं। दूध निकालने, उसे इकट्ठा करने, और बरतने में सफ़ाई का खूब ध्यान रक्खा जाना चाहिये। डॉ० पेपराल को यह देखकर बड़ा सदमा पहुँचा था कि "इस मामले में लोगों की नासमझी और लापरवाही की वजह से कई जगह बे-हिसाब कचरा और गन्दगी पाई गई थी। लोगों की आदतें बहुत गन्दी और घिनौनी थीं। सरकारी अफ़सर भी इस मामले में दिलचस्पी नहीं लेते थे।" हिन्दुस्तान में न तो मवेशियों के रहने के लिए अच्छे मकान हैं, और न उन्हें पीने के लिये साफ़ पानी मिलता है। मवेशियों के आस-पास की गन्दगी की कोई हद नहीं। बाज़ारों में दूध खुले बरतनों में लाया जाता है। दूध का बाज़ार ऐसे लोगों से घिरा रहता है, जो बड़े गन्दे तरीक़े से पान चबाते, तम्बाकू पीते और जगह जगह थूकते रहते हैं। दूध ख़रीदनेवाले मज़े से दूध में उँगली डाल डालकर उसके गाढ़ेपन की या उसमें मिलाये गये पानी की जाँच करते हैं। डॉ० पेपराल ने जिन-जिन शहरों और गाँवों का दौरा किया, उनमें

से ज्यादातर पर यह बात लागू होती है। इस बात का किसी को ख़याल ही नहीं होता कि दूध एक ऐसा कीमती आहार है, जो जल्दी ही बीमारी के कीड़े पकड़ लेता है। दूध को भी लोग ख़रीदने की दूसरी चीज़ों-जैसा ही समझ बैठे हैं। तो फिर इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं कि बम्बई के दूध की जाँच करने पर वहाँ की सरकारी रिपोर्ट में एक सेण्टीमीटर दूध में बीमारी के क़रीब ३ करोड़ ६० लाख कीड़े बताये गये! इस रिपोर्ट को पढ़कर बहुत अफ़सोस होता है।

५—दूध में मिलावट की तो बात ही न पूछिये। यह एक आम बीमारी है, जिस पर सख्त रोक लगनी चाहिये। दूसरी बुराइयों के साथ यह भी जुड़ी हुई है। मिलावट से 'पास्चराइज़ेशन' (दूध को गरम करके एक दम ठण्डा करने का तरीका, जिससे कीड़े मर जाते हैं, और दूध ज्यादा देर तक टिका रहता है) बेकार हो जाता है। चूँकि दूध कच्ची हालत में ५ या ६ घण्टे से ज्यादा नहीं टिक सकता, इसलिये उसे जल्दी-से-जल्दी बेच देना चाहिये। चुनाँचे शहरों के नज़दीक़ की जगहों में ही दूध ज्यादा मिक़दार में पैदा करने की कोशिश करनी चाहिए, और वहाँ स्पेशल रेलगाड़ियों का इन्तजाम होना चाहिये।

६—मिलिटरी डेरी फार्म, और दयालबाग-जैसी कुछ संस्थाओं, और शायद कुछ खानगी डेरी फार्मों को छोड़कर हिन्दुस्तान में डेरियाँ हैं ही नहीं। नई डेरियाँ बननी चाहिए। उनके लिये जिन मामूली चीज़ों की ज़रूरत होती है, वे सब आसानी से मुल्क में बनायी जा सकती हैं। डॉ० पेपराल का कहना है कि आम जनता की माँग का ख़याल न रख कर सिर्फ़ मिलिटरी डेरी फ़ार्मों को बढ़ाते जाना ग़लत है। सारे मुल्क के लिए ख़ूराक की जो नीति या पॉलिसी बने; उससे इनका मेल बैठना चाहिये।

७—उनका ख़याल है कि शहरों से दूर के देहात में दूध का पाउडर वग़ैरह चीजें तैयार की जानी चाहिये। "पंजाब और सिन्ध में, जहाँ आबपाशी बहुत होती है, वहाँ खेती भी ख़ूब होगी और इस वजह से

दूध भी खूब होगा। इन जगहों में ऊपर कही गई चीज़ें पैदा की जा सकती हैं।" वे पंजाब से बाहर मवेशी भेजने की नीति को क़तई पसन्द नहीं करते। डॉ० पेपराल ग्राम उद्योग के तौर पर गाँवों में ही घी बनाने की तहरीक को बढ़ावा देना चाहते हैं। उनके खयाल से घी बनाने के लिये दूध दूर-दूर के केन्द्रों में न भेजा जाय, और इस तरह गाँव वालों को दूध की छाछ वगैरह चीज़ों से महरूम न रक्खा जाय। ऐसा करने से उनकी खूराक में से एक अच्छी चीज़ निकल जाती है। डॉ० पेपराल हिन्दुस्तान में मक्खन बनाने की राय नहीं देते, क्योंकि ऐसा करने से पीने का दूध खर्च हो जाता है। मक्खन और पनीर हमें आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड से मंगाना चाहिये।

८—डॉ० पेपराल दूध का एक स्टैण्डर्ड या पैमाना क़ायम कर देने के हक़ में हैं। पर यह काम किसी ज़िम्मेदार संस्था के ज़रिये होना चाहिये।

९—उनका कहना है कि हिन्दुस्तान में सस्ता दूध बेचने की योजनायें (स्कीमें) बनाई जायँ। जब मुल्क की सेहत और भलाई का सवाल पेश हो, तो दूध की क़ीमत की बात गौण मानी जानी चाहिये। "आज हिन्दुस्तान में जितने मवेशी हैं, उन्हीं को ठीक से खिलाया-पिलाया जाय, तो उनसे इतना दूध मिल सकता है कि सारे मुल्क में बच्चेवाली हर एक माँ को और छोटे बच्चे को आधा सेर और बड़े को पाव भर दूध रोजाना दिया जा सके।"

१०—आज दूध के भाव में जगह-जगह बड़ा फ़र्क़ दिखाई देता है। यह बात ग़ौर करने लायक़ है कि बम्बई और कलकत्ते में दूध का भाव इंग्लैण्ड से दोगुना है। उनकी सिफ़ारिश है कि दूध पैदा करनेवालों के लिये दूध की दर मुक़र्रर कर दी जानी चाहिये। अगर उन्हें यह भरोसा करा दिया जाय कि तयशुदा दाम उन्हें हमेशा मिलते रहेंगे, तो दूध का भाव लाज़िम तौर पर ऊँचा रखना ज़रूरी न रहे। दूध के खरीदारों के लिये भी दूध की कम-से-कम दर नियत की जा सकती है।

११—सराकारी मदद के बारे में डॉ० पेपराल की राय है कि बड़े पैमाने पर दी जाय, लेकिन क़र्ज़ की शकल में।

१२—अख़ीर में उन्होंने रिसर्च या अनुसन्धान पर ज़ोर दिया है। इस तरफ़ हिंदुस्तान में अभी तक बिलकुल ध्यान नहीं दिया गया है। इस मामले में सब से पहले हमें "जल्दी-से-जल्दी इस बात की जाँच करनी चाहिये कि काफ़ी चारेवाली जगहों में भी मवेशी दूध कम क्यों देते हैं? उनका दूध बढ़ता क्यों नहीं? इसका इलाज ढूँढ़ना चाहिये।" इस बात का भी वैज्ञानिक अध्ययन किया जाना चाहिये कि "विदेशों से दूध की बोतलें मँगाने के बजाय मुल्क में ही किसी चीज़ से दूध रखने के अच्छे और सस्ते बरतन कैसे तैयार किये जा सकते हैं?"

डॉ० पेपराल की जाँच से नीचे की बातें ज़ाहिर होती हैं—

(अ) मवेशी आधे भूखे रहते हैं।

(आ) मवेशियों के रहने वग़ैरह का इन्तज़ाम अच्छा नहीं है।

(इ) दूध की पैदाइश दिन दिन कम होती जाती है।

(ई) दूध पैदा करनेवाले ज़्यदातर अपढ़, क़र्ज़ से लदे और ग़रीब हैं।

(उ) दूध का भाव दुनिया में सब से ऊँचा है।

(ऊ) दूध की आमदनी का औसत दुनिया में सब से कम है।

(ए) दूध में आमतौर पर सब जगह मिलावट की जाती है।

(ऐ) न तो सफ़ाई के उसूलों की जानकारी है, और न उनकी तरफ़ ध्यान दिया जाता है।

(ओ) आमतौर पर बेईमानी और बुराइयाँ फैली हुई हैं

(औ) आम जनता लापरवाह है।

(अं) इस बारे में पब्लिक संस्थाएं गहरी लापरवाही दिखाती हैं।

(अः) डेरियों की और उनके सामान की कमी है।

इस रिपोर्ट से यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि हिन्दुस्तान में जल्दी ही

दूध के बारे में कोई तयशुदा नीति बना लेना कितना जरूरी है। अगर एक खेती-प्रधान मुल्क के लोगों की तन्दुरुस्ती को और उसके मवेशी-धनको और ज्यादा गिरने और बरबाद होने से बचाना है, तो केन्द्रीय (मरकजी) और सूबों की सरकारों को जल्दी-से-जल्दी इस मामले को अपने हाथ में लेना चाहिये।

चरखा कैसे चले?

जिस तरह लोगों के दिलों में कई चीज़ों की लहरें उठती हैं, उसी तरह चरखे, तकली और गांधी-टोपी की लहर भी अक्सर उठा करती है। तब हज़ारों की तादाद में लोग ये चीज़ें खरीदने लगते हैं। वैसे देखा जाय, तो आज तक लाखों चरखे और तकलियाँ बनकर बिक गईं, लेकिन आज उनमें से कितनी चलती हैं? अगर सब नहीं चलतीं, तो हमें सोचना चाहिये कि इसका कारण क्या है। सबसे बड़ी समस्या यह है कि कातने वालों में दिलचस्पी या रस कैसे पैदा किया जाय? कातने में दिल-चस्पी न होने के कारण तो कई होंगे, लेकिन आज हम बड़े-बड़े कारणों को ही देखें, और उनका इलाज ढूँढ़ें।

कुछ ख़ास कारण ये हैं—

१. चरखे का ठीक तरह से न बनना, और उसमें कोई-न-कोई ख़राबी रह जाना।

२. चरखे के बिगड़ने पर उसे दुरुस्त करने की जानकारी न होना।

३. बिकने के बाद, बेचने वाले का चरखे से और उसके खरीदार से कोई ताल्लुक़ न रहना।

४. अच्छी पूनियों का न मिलना।

५. सूत बुनवाने का इन्तज़ाम न होना।

इन कारणों से कातने वालों का रस सूख जाता है। उनकी दिलचस्पी मारी जाती है। अब हम देखें कि यह दिलचस्पी क़ायम कैसे रह सकती है ?

हर एक बिक्री-भण्डार में इस बात का इन्तज़ाम किया जाय कि बिगड़ा चरखा वहाँ दुरुस्त हो सके, या उसके बदले में नया चरखा दिया जा सके, और दाम कम-से-कम लिये जायँ।

हर एक कातने वाला चरखा दुरुस्त करने का इल्म भी हासिल कर ले।

भण्डार के रजिस्टर में चरखे के ख़रीदार का नाम व पता रक्खा जाय।

नया चरखा बेचते वक्त उसके साथ एक परचा ख़रीदार को दिया जाय, जिसमें चरखा दुरुस्त करने की तरकीब लिखी हो। जब कोई ख़रीदार टूटा या बिगड़ा हुआ चरखा भण्डार वालों के पास लावे, तो वे वाजिब क़ीमत लेकर या मुफ्त में उसे सुधार दिया करें। भण्डार से बेचे गये सामान में कोई ग़लती रह गई हो, तो शिकायत आने पर वह बदल दिया जाय।

पूनी बेचना बन्द किया जाय। कपास बेचा जाय, और तुनाई सबको सिखायी जाय।

जब तक बुनाई के लिये घर-घर करघा चलने न लगे, तब तक हमें बुनाई का इन्तजाम करना ही होगा।

मतलब यह है कि खादी-भण्डारों को व्यापारीपन छोड़कर सच्चे सेवक और कारीगर बनने की ज़रूरत है।

[श्री कनु गांधी का लेख सोचने लायक़ है। याद रहे कि चरखा पश्चिम की छोटी या बड़ी चीज़ों जैसा नहीं है, और न वह वैसा हो सकता है। करोड़ों घड़ियाँ एक जगह बनाई जाती हैं। दुनिया में बिजली है। सीने की मशीनों का भी यही इतिहास (तवारीख़) है। ये चीज़ें

एक सभ्यता (तहज़ीब) की निशानी हैं। चरखा इससे उलटी सभ्यता का प्रतीक (निशानी) है। हम एक जगह सब चरखे बनाकर उन्हें सारे हिन्दुस्तान में फैलाना नहीं चाहते। हमारा आदर्श यह है कि देहात में या शहर में जहाँ कहीं कत्तिनें रहें, वहीं चरखा और वैसा दूसरा सामान बने। इसी में चरखे की क़ीमत है। चरखे में कुछ टूट-फूट हो जाय, तो उसे दुरुस्त करना भी कत्तिनों को सीख लेना चाहिये। ये सारे काम चरखा-संघ के करने के हैं। जब तक यह न होगा, खादी मिल के कपड़े की जगह न ले सकेगी।

विकेन्द्रीकरण

ता० ८, ९ और १० अक्तूबर के दिन दिल्ली में चरखा संघ की सभा में महत्त्व की चर्चायें (बहस) हुईं। चर्चा का एक विषय (मज़मून) विकेन्द्रीकरण था। विकेन्द्रीकरण खादी की आत्मा है। चरखा-संघ यह चाहता है कि हिन्दुस्तान के सात लाख गाँवों में चरखे और करघे चलें, हिन्दुस्तान के करोड़ों लोग खादी ही पहनें, और मिलों का नाम-निशान न रहे।

अब वक्त आ गया है, जब सूबे इसके लिये बिलकुल स्वतन्त्र या आज़ाद होना चाहें, तो स्वतन्त्र हो जायँ; सूबे न हों, या न हो सकें, तो तो ज़िले; ज़िले न हो सकें, तो तालुक़े, और तालुक़े न हो सकें, तो गाँवों के छोटे-छोटे गिरोह; और वे भी न हो सकें, तो गाँव स्वतंत्र हो जायँ। हर एक व्यक्ति तो इसके लिये स्वतंत्र है ही।

यहाँ यह सवाल न उठना चाहिये कि यह कैसे हो? जो चरखा-संघ के मातहत हैं, वे संघ के मंत्री को ब्योरेवार लिखें, ताकि उसका फैसला किया जा सके। इनके पास संघ की मिल्कियत हो, उन्हें पैसे लौटाने का कोई इन्तज़ाम करना पड़ेगा। जो संघ की नीति को अपनायेंगे, उनके

लिये नीतिका बन्धन रहेगा। इस बन्धन को मंजूर करना किसी के लिये लाज़िमी नहीं। धर्म उसीका, जो उसका पालन करे। धर्म एक ही नहीं होता। मूल या जड़ एक होती है, पर शाखायें या डालें अनेक हैं। अनेक डालों पर अनेक पत्ते होते हैं। एकता में विविधता संसार का सुन्दर नियम या क़ानून है। इस लिए चरखा-संघकी नीति यह है कि विकेन्द्रीकरण को जितना बढ़ावा दिया जा सके, दिया जाय। शाखाओं के काम का तरीक़ा ऐसा होना चाहिये, जिससे वे जितनी जल्दी स्वाधीनता या आज़ादी हासिल कर सकें, उतनी जल्दी हासिल कर लें।

कल-कारखानों के एवज में क्या ?

एक भाई पूछते हैं—

'क्या आप यह मानते हैं कि हमारे देश में कल-कारखाने इस हद तक बढ़ने चाहिये कि जिससे हिन्दुस्तान अपनी जरूरत के जहाज, रेलगाड़ी, मोटर, हवाईजहाज वगैरः खुद बना सके ? अगर आप इसे न मानते हों, तो क्या मेहरबानी करके आप यह बताइयेगा कि आमदरफ्त के इन जरियों के एवज में दूसरे कौन से जरिये होंगे, जिनकी मदद से एक आजाद मुल्क के नाते हिन्दुस्तान अपनी जिम्मेदारियाँ अदा कर सके ?

'अगर आप यह कबूल करते हों कि इस तरह के कल-कारखाने कायम किये जाने चाहिये, तो आपकी राय में इनके इन्तजाम पर और इनसे होनेवाले मुनाफे पर किसका अधिकार रहना चाहिये ?'

मैं नहीं मानता कि किसी मुल्क को किसी भी हालत में बड़े-बड़े कल-कारखानों की जरूरत होनी चाहिये। दरअसल, मैं तो यह मानता हूँ कि घरेलू रोजगार-धन्धों के जरिये अपने लाखों झोपड़ों की हालत सुधारकर, सादा मगर उम्दा जिन्दगी अपना कर, और दुनिया के साथ हेल मेल

और अमन से रहकर ही आजाद हिन्दुस्तान 'त्राहि-त्राहि'—'बचाओ, बचाओ' की पुकार मचानेवाली दुनिया के तईं अपना फ़र्ज़ अदा कर सकेगा। धन और दौलत की पूजा ने हम पर बहुत ही तेज रफ़्तार से काम करने वाला जो मशीनी ताकत लाद ली है, उसकी नींव पर खड़े किये गये उलझन-भरे भौतिक या दुनियावी जीवन के साथ ऊँचे विचारों का कोई मेल नहीं बैठता। हम बढ़िया जीवन बिताने की कला सीखकर ही जिन्दगी की सारी मिठास को प्रकट कर सकेंगे।

खतरों या जोखिमों से भरा जीवन बिताने में एक तरह का नशा चाहे हो, मगर हमें खतरों का सामना करते हुए जीने में और खतरों से भरी जिन्दगी बिताने में जो फ़र्क है, वह अच्छी तरह समझ लेना होगा। जो आदमी खूँखार जानवरों से भरे और उनसे भी ज्यादा खूँखार आदमियों से बसे जंगलों में बिना बन्दूक के एक भगवान् का भरोसा रख कर तनहा रहने की हिम्मत दिखाता है, वह खतरों का सामना करके जीने वालों में है। दूसरा हमेशा हवा में ऊपर-ऊपर रहता है, और कभी कभी औंधे सिर जमीन पर उतर आता है। उसकी यह कसरत देखकर जो लोग दंग रह जाते हैं, वे उसकी तारीफ़ करने लगते हैं। इस तरह का आदमी खतरों से भरी जिन्दगी बिताता है। एक अपने सामने कोई मक़सद रखकर जीता है, दूसरे के सामने जिन्दगी का कोई मक़सद होता ही नहीं।

जिस दुनिया ने अपने को सिर से पैर तक हथियारों से लाद रखा है, और जिसके ठाट बाट और दिखावे की कोई हद नहीं है, उसके मुकाबले में लम्बाई-चौड़ाई और आबादी में काफी बड़ा, मगर इक्का-दुक्का कोई देश इस तरह की सादी जिन्दगी बिता सकता है या नहीं, यह एक सवाल है, जो बेएतक़ाद यानी अश्रद्धालु लोगों के मनमें शक पैदा कर सकता है। मगर इसका जवाब सीधा और सरल है। अगर सादी जिन्दगी जीने लायक है, तो उसके लिए कोशिश की जानी चाहिये; फिर भले वैसी

कोशिश करने वाला कोई एक ही आदमी हो या कुछ इने गिने लोगोंका अपना एक दल हो।

इसके साथ ही मैं यह भी मानता हूँ कि कुछ खास उद्योग, जो मानिन्द चाबी के हैं, जरूरी होंगे। मैं उस समाजवाद को नहीं मानता, जिसमें लोग या तो घर में बैठकर बातें करते हैं या हथियारों की मदद से मरने-मारने में यकीन रखते हैं। मैं अपनी श्रद्धा के अनुसार, एतकाद के मुताबिक, अमली काम करने में मानता हूँ। मैं उस दिन की राह देखता बैठना नहीं चाहता, जब सब के दिल बदल जायँगे और सब एक से हो जायँगे। इस लिए मैं 'की इंडस्ट्रीज' यानी खास-खास उद्योगों की फेहरिस्त तैयार करने के झमेले में न पड़ कर यह चाहूँगा कि जिन उद्योगों या कल कारखानों में बहुत से लोगोंको एक साथ काम करने की जरूरत पड़े, उनकी मालिक सरकार हो। सरकार के जरिये मजदूर अपनी कमालवाली या अनगढ़ मजदूरी का फल बहैसियत मालिक के पाते रहेंगे। लेकिन मेरे खयाल में ऐसी सरकार तो सिर्फ अहिंसा की बुनियाद पर ही खड़ी हो सकती है। इस लिए मैं दौलतो वालों की दौलत उनसे जबरदस्ती छीनूँगा नहीं, बल्कि मैं उनसे दरख्वास्त करूँगा कि वे एक आदमी की मिल्कियत को सरकार की मिल्कियत में बदलने के काम में मदद करें। क्या करोड़पति और राह की भिखारी, समाज की निगाह में कोई अछूत नहीं। दोनों एक ही बीमारी के दो अलग-अलग पहलू हैं। क्या अमीर और क्या गरीब, सब इन्सान ही हैं।

हिन्दुस्तान में और दूसरे मुल्कों में हमने हैवानियत के जो नजारे देखे हैं, और जो शायद आगे भी देखने पड़ जायँगे, उनके रहते भी मैं अपनी यह श्रद्धा, यह एतकाद, जाहिर करता हूँ। हम खतरों का सामना करते हुए जीना सीखें।

डॉक्टरों की टीका

(१) क्या यह एक आम तजरबा नहीं कि डॉक्टरों की तशखीस या निदान कोई पक्की चीज नहीं होती ? कई दफ़ा एक ही मरीज के बारे में उनकी राय अलग-अलग होती है, और बहुतों के लिए तो कोई तशखीस उस वक्त तक क़ायम ही नहीं होती, जब तक वे अच्छे न हो जायँ या मर न जायँ ?

(२) मान लीजिये कि तशखीस या निदान सही हो, तो भी उससे फ़ायदा क्या, अगर बाद में बीमारी का इलाज ऐसा न हो, जिससे बीमार तन्दुरुस्त हो जाय ? इस बारे में इन लोगों की डॉक्टरी किताबों में भी कोई एक तयशुदा राय नहीं मिलती। अगर हमें सिर्फ़ क़ुदरती इलाज पर चलना है, तो तशखीस की ज़रूरत ही क्या ? क्योंकि क़ुदरती इलाज़ में यह माना गया है कि तमाम बीमारियों की जड़ एक है, जब कि डॉक्टर तो बीमारियों के सैकड़ों नाम गिनाते हैं और उनमें यक़ीन रखते हैं।

(३) एक आपरेशन या चीर फाड़ की बात को छोड़ कर अपनी दवाओं का इलाज तजवीज करने में डॉक्टर लोग अपने शरीर-सम्बन्धी ज्ञान का क्या उपयोग करते हैं ? अगर नहीं करते, तो उन्हें इस बात का श्रेय क्यों नहीं मिलना चाहिये कि किसी वक्त उन्होंने फीज़ियोलॉजी और एनॉटमी का यानी शरीर-शास्त्र और शरीर रचना-विज्ञान का इल्म हासिल किया था ? क्योंकि रोज़मर्रा के अमल में न आने से वे इन विषयों की सब बातों को जल्दी ही भूल जाते हैं। ऐसी हालत में वैद्यों को ही महज इस लिए क्यों बुरा-भला कहा जाय कि वे त्रिदोष के बारे की अपनी जानकारी का इस्तेमाल असल में बहुत कम—नहीं के बराबर—करते हैं ?

(४) वैद्यों में जो खामियाँ या कमियाँ बताई जाती हैं, क्या असल में उनकी वजह सरकार का अपना रुख और रवैया नहीं ? सरकार ने

वैद्यों की तरफ़ ज़रा भी ध्यान नहीं दिया, और न उनके लिए संशोधन या खोज के ज़रिये ही मुहैया किये। ऐसी हालत में आयुर्वेद को ही क्यों बुरा कहा जाय, जब कि क़सूर सरकार का या व्यक्ति का है ? जो डॉक्टर निजी धन्धा यानी प्राइवेट प्रैक्टिस करते हैं, उन्हें भी खोज या रिसर्च के मौक़े कहाँ मिलते हैं ? और उनमें से बहुत कम ऐसे हैं, जो दूसरे मुल्कों में होने वाली खोजों के बारे में पढ़ते हों।

(५) आप अपने शरीर का मुआयना यानी डॉक्टरी परीक्षा बार-बार डॉक्टरों से ही करवाते हैं। क्या इसकी वजह से डॉक्टरों को लोगों की निगाह में एक ऐसी शोहरत और बड़प्पन नहीं मिलता, जो बेजा है और जिसके वे हक़दार नहीं ? इससे इलाज की दूसरी पद्धतियों या तरीक़ों को गौण जगह दी जाने लगती है, जब कि खास कर इन दूसरे तरीक़ों का आप पर ज्यादा नहीं तो बराबरी का हक़ होना चाहिये।

श्री ब्रजलाल नेहरू ने ये सवाल पूछे हैं। मेरे जवाब यों हैं :—

(१) इस सवाल में जो बात कही गई है, वह बिलकुल सही है। लेकिन फिर भी डॉक्टर तो फूलते-फलते ही नजर आते हैं। यह एक अजीब बात है, जिस पर हम सबको ग़ौर करना चाहिये।

(२) मेरा तजरबा तो यह है कि जहाँ तशखीस या निदान ठीक होता है, वहाँ इलाज भी उसी के मुताबिक किया जाता है। महज इस बिना पर डॉक्टरी किताबों की नुक्ताचीनी करना कि उनमें एक ही बीमारी के लिए अलग-अलग इलाज दिये गये हैं, बिलकुल ग़लत है। इन्सान के जिस्म की बनावट इतनी पेचीदा है कि उसके लिये कोई एक ही इलाज चल नहीं सकता। और यह कहना भी ग़लत होगा कि कुदरती इलाज में तशखीस की ज़रूरत ही नहीं। दोनों में फ़र्क यह है कि चूँकि कुदरती इलाज़ में एक ही चीज़ को सब बीमारियों की जड़ माना गया है, और इलाज भी पाँच महाभूतों की मदद से ही किया जाता है, इस लिये उसमें तशखीस या निदान आसान होता है। लेकिन ऐसा तो आम

उसूल के तौर पर ही कहा जा सकता है। असल में कुदरती इलाज करने वाला कोई आदमी बिना सोचे-समझे हर एक बीमारी के लिए मिट्टी के पुलटिस की तजवीज़ नहीं करेगा।

(३) यह कहना कि डॉक्टर लोग शरीर के गुण धर्म बताने वाले शास्त्र की और शरीर की बनावट के शास्त्र की जानकारी का कोई उपयोग नहीं करते, उनके साथ घोर अन्याय करना है। निदान के मामले में वैद्यों और डॉक्टरों के तरीके एक-दूसरे से बिलकुल जुदा होते हैं, इस लिए उनकी कोई तुलना करनी ही न चाहिये। त्रिदोष-पद्धति के महत्त्व के बारे में मैं कुछ भी नहीं जानता।

(४) मैं नहीं मानता कि आयुर्वेद में रिसर्च या संशोधन की संस्थायें खड़ी न करने में सरकार ही कसूरवार है। असली संशोधन या खोज के मामले में हमारे वैद्य बहुत लापरवाह रहे हैं, और इसके लिए मैंने बार-बार उन पर इलज़ाम लगाया है। उनमें से जो ऊँची लियाकत वाले हैं, वे सब रुपया कमाने में लगे हुए हैं। बाकी के इतने अज्ञान हैं कि वे इस मामले में कुछ कर ही नहीं सकते, या फिर ऐसे हैं कि आयुर्वेद की पुरानी किताबों में जो कुछ मिल जाता है, उसीसे संतोष कर लेते हैं। मुझे यह कहते हुए दुःख होता है, लेकिन बावजूद इसके कि मेरे दिल में आयुर्वेद और यूनानी हिकमत के लिए बहुत इज्जत है, मैं इस राय पर पहुँचा हूँ। ये दोनों हिकमतें हमारे देश की हैं और चुनाँचे दोनों हमारे लिए मुफ़ीद भी हैं।

(५) मैं नहीं मानता कि जो डॉक्टर बार-बार मुझे देखते हैं, उसकी वजह से उन्हें कोई खास या बेजा शोहरत मिलती है। उन्हें इस चीज की जरूरत ही क्या ? मेरी शारीरिक परीक्षा करने से बहुत पहले वे अपना दुनिया में खासा नाम कमा चुके थे। और, न ही इसकी वजह से दूसरे किन्हीं तरीकों को धक्का पहुँचता है। बहुत से वैद्य और हकीम मेरे दोस्त हैं। लेकिन उनको लम्बी-चौड़ी या बार-बारकी तशखीस जरूरी नहीं

मालूम होती। हाँ, मैं डॉक्टरों से अपनी जाँच करवा लेता हूँ, और अफ़सोस है कि यह खबर अखबारों में छप जाती है, लेकिन मैं उनकी दवा नहीं लेता। मेरा इलाज तो खास कर पाँच महाभूतों की और मालिश व खूराक की तब्दीली के जरियों से ही होता है।

मेरे दिल में कुदरती इलाज के लिए और देशी हिकमतों के लिए जो प्रेम या मुहब्बत है, उसका यह मतलब नहीं कि पच्छिम के मुल्कोंने डॉक्टरी के हुनर में जो तरक्की की है, उसे मैं देख नहीं सकता, गोकि मैंने सख्त लफ्जों में उसकी टीका की है और उनकी हिकमत को 'जादू-टोने' का नाम दिया है और अब भी देता हूँ। वजह इसकी यह है कि उन्होंने अपने इलाज में ज़िन्दा चीरफाड़ को और उसके साथ की तमाम बेरहमी को जगह दी है। दूसरे, वे इन्सान की ज़िन्दगी को बढ़ाने के लिए सब तरह के काम, फिर वे कितने ही बुरे क्यों न हों, करने के लिए तैयार रहते हैं और शरीर के अन्दर रहने वाली आत्मा को बिलकुल भूल गये हैं। मैं नैसर्गिक उपचार को कभी छोड़ नहीं सकता, फिर वह कितना ही मर्यादित क्यों न हो, और उसके डॉक्टर उसके बारे में कितने ही झूठे और निकम्मे दावे क्यों न करते हों। सबसे बड़ी बात यह है कि कुदरती इलाज में आदमी खुद अपना डॉक्टर बन सकता है, दूसरी हिकमतों में यह नामुमकिन है।

गन्दगी की हद

पंचगनी एक अच्छा पहाड़ी मुक़ाम है। वहाँ की हवा ही दवा समझिये। जिस तरह गर्मी के मौसिम में राजा महाराजा मौज उड़ाने मसूरी जाते हैं, उस तरह पंचगनी में नहीं आते। फिर भी वह ग़रीबों की जगह नहीं। अब अगर वहाँ एक मकान उनके लिए मिल गया है,

तो उससे किसीको ताज्जुब नहीं होना चाहिये। मगर जिस तरीके से आज वहाँ मैला फैलाया जाता है, वह तरीक़ा क़ायम रहा, तो पंचगनी ज्यादा दिन तक आरोग्यप्रद स्थान नहीं रह सकेगा। सुना है कि महाबलेश्वर की भी ऐसी ही हालत है। मैं समझता हूँ कि इसमें क़सूर हमारा अपना है, सरकार का नहीं। कुछ डॉक्टरों ने मुझसे कहा है कि हम लोग किसी हद तक अपनी सफाई रखना तो जानते हैं, लेकिन समाज में सफ़ाई रखने के नियमों का हमें ज़रा भी इल्म नहीं। हमें अफ़सोस के साथ क़बूल करना पड़ेगा कि यह टीका सच है। इसकी मिसाल के तौर पर मैं नीचे डॉ० दिनशा महेता का बयान देता हूँ, जो उन्होंने पंचगनी में मैले के इन्तज़ाम की खराबी के बारे में दिया है। यह बयान मैं इस उम्मीद से दे रहा हूँ कि थोड़े वक्त में हमारी शरम का यह कारण दूर हो जायगा।

"बापू,

"आज सुबह मैं वह जगह देख आया, जहाँ पंचगनी का मैला डाला जाता है। डॉ० सावन्त मुझे ले गये थे। यह जगह 'सिडनी पॉइण्ट' के पीछे, सदर रास्ते से आधमील और पंचगनी के बाज़ार से क़रीब एक और डेढ़ मील के बीच में होगी। पारसी लड़कों के स्कूल के सामने से यह रास्ता जाता है और आज तो पाखाने की बदबू क़रीब-क़रीब इस स्कूल तक आ रही थी, क्योंकि हवा उसी तरफ़ से आ रही थी और जोर की थी। 'सिडनी पॉइण्ट' से वहाँ का दृश्य या नज़ारा बहुत अच्छा नज़र आता है और अगर पाखाने की बदबू न आये, तो हवा बहुत अच्छी है लेकिन मालूम होता है कि आजकल वहाँ कोई जाता नहीं। वहाँ तक जाने के लिए छोटी मोटर के लायक़ रास्ता बनाया गया है, लेकिन फ़िलहाल उस रास्ते पर घास उगी हुई है। पॉइण्ट के नीचे दो बँगले हैं। मगर मुझ से कहा गया कि वहाँ कोई रहना नहीं चाहता, क्योंकि वहाँ बदबू, मक्खी और मच्छर बहुत हैं।

"कूड़ा करकट तो वहाँ के रास्ते की एक बाजू में ही डाल दिया जाता है। वहाँ कूड़े करकट के काफ़ी बड़े ढेर लगे हुए हैं। ऐसी जगह में मक्खियाँ और दूसरे जन्तु पैदा न हों, तो वह सचमुच ही एक अचम्भे की बात होगी।

"कूड़े-करकट वाली जगह से कुछ ही दूर पर गड्हों में पाखाना पड़ा देखा। ऐसे कोई चार गड्हे क़रीब १०×५×३ के मैले से भरे दिखाई पड़े। दूसरे कुछ खाली पड़े थे। मुझ से कहा गया कि अक्सर मेहतर लोग मेहनत बचाने के लिए मैले को गड्हों के बाहर ही उड़ेल देते हैं और जब इस बारे में या दूसरे किसी मामले में उनसे कुछ भी कहा जाता है, तो वे सब मिलकर हड़ताल कर देते हैं। इससे म्युनिसिपैलिटी को और पंचगनी के शहरियों को उनके सामने झुकना पड़ता है। वे बाहर के मेहतरों को आने नहीं देते।

"इन घूरों का और वहाँ की उस गन्दगी का वह दृश्य अभी तक मेरी आँख और नाक से दूर नहीं हुआ है। वहाँ जाने वालों को अपनी आँख और नाक की खास तैयारी करके ही जाना चाहिये। और वहाँ से आने के बाद नहा कर मन और पेट को शान्त करने के लिए सो जाना चाहिये, वरना डॉक्टर की ज़रूरत पड़ेगी।

"इस हालत को सुधारने के लिए मुझे नीचे लिखी बातें सूझती हैं—

"(१) कूड़ा करकट और मैला गड्हों में ही डाला जाय और जब डाला जाय, तभी उस पर उससे दूनी मिट्टी डाली जाय। इतना तो कम-से-कम करना ही चाहिये।

"(२) या सब को 'इन्सिनरेटर' में यानी भट्टी में जला डाला जाय।

"(३) वहाँ 'सेप्टिक टैन्क' बनायें जाये और उनकी खाद व पानी का इस्तेमाल करने के लिए वहीं आम रिआया के काम की साग-सब्ज़ी उगाई जाय और दूसरे पेड़ पौधों का बगीचा लगवाया जाय।

"(४) हर एक बंगले के मालिक के लिए 'सेप्टिक टैन्क' बनाना

लाज़िमी कर दिया जाय। और मैले को नीचे बहाने के लिए नहाने के पानी का इस्तेमाल किया जाय। इस तरह से टैन्कों के नमूने के नक़शे फ़ौजी ठेकेदारों से मिल सकते हैं। इस तरह फ्लश के लिए दूसरा पानी न मिले, तो भी काम चल सकता है। मेरे ख्याल में इसके लिए नहाने का पानी काफ़ी हो सकता है और काम दे सकता है।

"(५) पक्की गन्दी नालियों की और पम्पिंग स्टेशन की तजवीज भी करनी होगी। मगर उसके लिए काफ़ी पानी का मिलना जरूरी है। इसके लिए पंचगनी में पानी की जो स्कीम बनी है, उस पर पहले अमल किया जाना चाहिये। यह स्कीम पंचगनी की म्युनिसिपैलिटी से मिल सकती है। इसकी तफ़सील बाद में मालूम करके लिखूँगा।

"यह पाँचवीं सूचना सबसे अच्छी है, लेकिन खर्चीली है और इसमें वक्त भी लगेगा। इसी लिए मेरी राय है कि शुरू में पहले या दूसरे सुझाव पर फ़ौरन अमल किया जाय।"

कपड़े की तंगी

श्री मनु सूबेदार खादी में और दूसरे ग्राम उद्योगों में रस लेते हैं। उन्होंने मुझे नीचे लिखा नोट कुछ दिन पहले भेजा था। मैंने उसे छापने में देर की, क्योंकि मैं चाहता था कि हो सके तो 'हरिजन' में छापने के बनिस्बत उसका कोई ज्यादा असरकारी इस्तेमाल करूँ। मगर मुझे वह सूझा नहीं। सो इसे छापता हूँ, ताकि सूबोंकी सरकारें, इस बारे के जानकार शख्स और संस्थायें (जमायतें) इस पर अमल कर सकें, भले ही उनका क्षेत्र कितना ही छोटा क्यों न हो।

श्री मनु सूबेदार की तजवीज़ यह है:—

"हरएक देहात को एक बेल या गाँठ रूई की दी जाय। देहात के

लोग उसे कातकर सूत तैयार करें। सूत को ताने के लिए दुबटा किया जाय या बाने के लिए ऐसे ही इस्तेमाल किया जाय।

"एक गाँठ रूई में से २४०० या १८०० गज कपड़ा (सूत के नम्बर के मुताबिक़) तैयार होगा।

"जहाँ तकलियों या चरखों की ज़रूरत हो, सरकार उसे पूरा करे (चरखे और तकलियाँ बनाने का इन्तज़ाम जेलों में किया जाय)।

"कपड़ा तैयार होने पर हरएक देहाती को उसका हिस्सा नाप कर दिया जाय।

"इन देहातों में जहाँ कहीं किसानों के पास फालतू अनाज हो, और अनाज इकट्ठा करने की ज़रूरत समझी जाय, वहाँ अनाज के बदले में कपड़ा दिया जाय। दूसरी जगहों पर रूई की क़ीमत चुकाने के लिए देहाती पैसे इकट्ठे करें। इसका मतलब यह होगा कि लोगोंको रूई के दाम कपड़ा मिल जायगा। (शुरू में रूई की क़ीमत सरकार चुकायेगी)।

"इस तरह से कपड़े की तंगी कम हो जायगी और फालतू रूई भी काम में आ जायगी। कपास बोने वालों को इससे मदद मिलेगी।

"गाँव के पंच को रूई का कब्ज़ा लेना होगा और उसे बाँटने, कतवाने, बुनवाने वग़ैरः का सारा इन्तज़ाम करना होगा। इस तरह से हर एक गाँव में—

(१) ग्राम उद्योगों का काम शुरू होगा,

(२) लोग मिल-जुल कर काम करना सीखेंगे,

(३) बड़े-छोटे सब मेहनत करने में हिस्सा लेंगे,

(४) दलाल को कोई स्थान नहीं रहेगा,

"अगर शुरू में बम्बई इलाक़े के ही २० हज़ार या सिर्फ़ २ हज़ार गाँवों में ही यह प्रयोग (तजरबा) किया जाय, तो ६ हफ़्तों में नतीजा देखा जा सकेगा।

"सरकार को एक बेल पर २२५ रुपयेके हिसाब से ख़र्च करना होगा।

इसमें से बहुत-सा रुपया तो अनाज या रुपये के रूप में वापिस आ जायगा और इस तरह देहाती अपनी मदद खुद करना सीखेंगे।

"जहाँ पर करघे न हों या जहाँ कता हुआ सूत ताने और बाने दोनों के लिए इस्तेमाल न हो सके, वहाँ मदद की ज़रूरत पड़ सकती है। मगर यह तो काम को संगठित करने की तफ़सील की बात हुई। ऐसी चीज़ों के बारे में तो हर एक ज़िले में, जिस आदमी के हाथों में यह काम सौंपा होगा, वह सोच लेगा।

"जब किसी देहात से रूई की बेल की क़ीमत वसूल हो जाय, तो सरकार वहाँ एक दूसरी बेल भेज दे।"

इतना यहाँ और कह दूँ कि मैंने जो योजना सुझाई है, उसमें और इसमें थोड़ा फ़र्क़ है। मेरे खयाल में पहली शायद ज्यादा अच्छी है, मगर मेरे पास श्री मनु सूबेदार के नोट की क़ीमत ज्यादा है। उन्होंने सब आँकड़े दिये हैं, एक बेल से काम करने का तरीक़ा सुझाया है, और इससे भी बढ़कर एक अर्थ शास्त्री होने के नाते उन्होंने अपनी योजना मुझसे स्वतंत्र बनाई है। इनसान की बनाई हुई हर एक योजना में नुक्स निकालना तो आसान काम है। हमारा काम तो यह है कि अगर हो सके तो नुक्स दूर करें और अगर कुछ ऐसे नुक्स रह जाते हैं जो दूर नहीं हो सकते, तो उनके बावजूद काम शुरू कर दें। अगर हम संपूर्णता की राह देखते रहे, तो कोई सुधार हो ही नहीं सकता।

हड़तालें

अखबारों में खबर छपी थी कि डाकवालों की मौजूदा हड़ताल को मैंने आशीर्वाद दिये हैं, मगर यह सच नहीं है। असल बात यह है कि एक रोज़ कनू गांधी एक डाकिये को मेरे पास नमस्कार करने के लिए ले आये। उन दिनों हड़ताल शुरू ही हुई थी। डाकिये ने मेरे आशीर्वाद माँगे। मैंने उससे कहा कि अगर उनकी हड़ताल वाजिब है और वे सब बिलकुल अहिंसक रहे, तो उन्हें ज़रूर ही कामयाबी मिलेगी। इसका यह मतलब नहीं कि मैंने उनकी इस हड़ताल को आशीर्वाद दिया था। मगर मैंने क्या कहा था और डाकवालों की हड़ताल जायज़ थी या नाजायज, इस बहस को अभी छोड़ दें। चूँकि मैं अपने आपको अहिंसक हड़ताल चलाने में माहिर समझता हूँ, इसलिए मेरा धर्म है कि मैं इस हड़ताल के और दूसरी सब हड़तालों के चलाने वालों को और आम जनता को भी अहिंसक हड़तालों की शर्तें समझा दूँ।

ज़ाहिर है कि बिना वज़नदार वजूहात के हड़ताल होनी ही न चाहिये। नाजायज़ हड़ताल को न तो कामयाबी हासिल होनी चाहिये और न ही किसी हालत में उसे आम रिआया की हमदर्दी मिलनी चाहिये।

आम तौर पर लोगों को यह मालूम ही नहीं हो सकता कि हड़ताल जायज़ है या नाजायज़, सिवा इसके कि हड़ताल की ताईद कोई ऐसे लोग करें, जो ग़ैर-जानिबदार यानी निष्पक्ष हों और जिन पर आम लोगों का पूरा विश्वास हो। हड़ताली खुद अपने मामले में राय देने के हक़दार नहीं। इस लिए या तो मामला ऐसे पंच के सिपुर्द करना चाहिये, जो दोनों तरफ़ के लोगों को मंजूर हो, या उसे अदालती फ़ैसले पर छोड़ना चाहिये। जब इस तरीक़े से काम किया जाता है, तो आम तौर पर पब्लिक के सामने हड़ताल का मामला पेश करने की नौबत ही नहीं आती। अलबत्ता, कभी-कभी यह ज़रूर होता है कि मग़रूर मालिक पंच

के या अदालत के फ़ैसले को ठुकरा देते हैं, या गुमराह मज़दूर अपनी ताक़त के बल मालिक से ज़बरदस्ती और भी रियायतें पाने के लिए फ़ैसले को मंज़ूर करने से इनकार कर देते हैं। ऐसी हालत में मामला आम रिआया के सामने आता है।

जो हड़ताल माली हालत की बेहतरी के लिए की जाती है, उसमें सियासी या राजनीतिक मक़सद की मिलावट नहीं होनी चाहिये। ऐसा करने से सियासी तरक्क़ी कभी नहीं हो सकती। बल्कि होता यह है कि अक्सर हड़तालियों को ही इसका नतीजा भुगतना पड़ता है, चाहे उनकी हड़ताल का असर आम लोगों की जिन्दगी पर पड़े या न पड़े। सरकार के सामने कुछ दिक्क़तें ज़रूर खड़ी हो सकती हैं, लेकिन उनकी वजह से हुकूमत का काम रुक नहीं सकता। अमीर लोग रुपया खर्च करके अपनी डाक का बन्दोबस्त ख़ुद कर लेंगे, लेकिन असल मुसीबत तो गरीबों को झेलनी पड़ती है, जिनकी पीढ़ियों से चली आई एक अहम सहूलियत बन्द हो जाती है। ऐसी हड़तालें तो तभी करनी चाहिये, जब इन्साफ कराने के दूसरे सब ज़रिये नाकाम साबित हो चुके हों। आज तो सब सूबों में लोगों की अपनी सरकारें काम कर रही हैं। हड़ताल करने से पहले डाकवालों का धर्म था कि वे उनके साथ मशविरा करते। जहाँ तक मैं जानता हूँ, सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री बालासाहब खेर और श्री मंगलदास पकवासा इस मामले के बीच में पड़े हैं। अगर डाकवालों ने उनकी सलाह को ठुकरा दिया है, तो कहना होगा कि उन्होंने यह खतरनाक क़दम उठाया है। अगर ये सब ताक़तवर यूनियनें अपनी निज की हुकूमत का और कांग्रेस की वर्किंग कमेटी के मेम्बरों का कहना न सुनेंगी, तो इसके मानी ये होंगे कि वे कांग्रेस को भी नहीं मानतीं। उन्हें ऐसा करने का हक़ तभी हो सकता है जब कांग्रेस उनके स्वार्थ को बेचने लगे।

हमदर्दी दिखाने के लिए भी दूसरों को उस वक्त तक हड़ताल नहीं करनी चाहिये, जब तक यह साबित न हो जाय कि हड़तालियों ने सभी

क़ानूनी और जायज़ ज़रियों को आज़मा लिया है और उसमें वे नाकाम रहे हैं, या यह साबित न हो जाय कि कांग्रेस ने उन्हें धोखा दिया है, या उनके हित की खबरदारी नहीं रक्खी है, या खुद कांग्रेस ने संगदिल और ज़िद्दी मालिकों से इन्साफ़ पाने के लिए हमदर्दी में हड़ताल करने की आवाज़ न उठाई हो।

आज तो हुकूमत को बेकार बनाने के लिए सारे मुल्क में हड़तालें कराने की बात सुनी जाती है। हड़ताल के ज़रिये हुकूमत को बेकार बनाने का यह क़दम एक आख़िरी सियासी क़दम है और यह क़दम उठाने का हक़ सिर्फ़ कांग्रेस का ही होना चाहिये, दूसरी किन्हीं यूनियनों का नहीं, फिर वे कितनी ही ताक़तवर क्यों न हों। अगर आज़ादी हासिल करने के लिए कांग्रेस ही आम लोगों की सबसे बड़ी और अहम संस्था है, तो हुकूमत को बेकार बनाने का काम भी उसी के हाथ में रहना चाहिये। फ़िलहाल कांग्रेस तजवीज़शुदा विधान-सभा को कामयाब बनाने की कोशिश में लगी हुई है। उसे इस काम में बेहद मुश्किलें पेश आने वाली हैं। ऐसी हड़तालों से उसके रास्ते में बहुत ज़्यादा रुकावटें पैदा हो सकती हैं।

ऊपर की इन बातों से यह ज़ाहिर है कि सियासी हड़तालों की अपनी अलग जगह है और उनको माली हड़तालों के साथ न तो मिलाना चाहिये और न उनका आपस में वैसा कोई रिश्ता रक्खा जाना चाहिये। अहिंसक लड़ाई में सियासी हड़ताल की अपनी एक खास जगह होती है। ऐसी हड़ताल गहरे सोच-विचार के बाद ही की जाती है—जब-तब और ज्यों-त्यों नहीं। ऐसी हड़तालें बिलकुल खुली होनी चाहिये और उनमें गुण्डा-शाही की कोई गुञ्जाइश न रहनी चाहिये। उनकी वजह से कहीं किसी तरह की हिंसा नहीं होनी चाहिये। इस लिए सब तरह के हड़तालियों को मैं नरमी के साथ यह सुझाना चाहता हूँ कि वे पंच के या अदालत के फ़ैसले को मंजूर करने का साफ़-साफ़ ऐलान करें और कांग्रेस की रहनु-माई हासिल करके उसकी सलाह पर चलें। और, जो लोग हमदर्दी

दिखाने के लिए हड़ताल करते हैं, उनसे मैं कहूँगा कि वे तब तक अपनी हड़तालें बन्द रक्खें, जब तक कांग्रेस तजवीज़शुदा विधान-सभा के काम को सफल बनाने की कोशिश में लगी है, और सूबों की सरकारें आम लोगों के नुमाइन्दों के हाथ में हैं।

शराब के बारे में कहावतें

श्री जे० गिलखिस्ट लॉसन ने दुनियाँ की बढ़िया-से बढ़िया कहावतों और वचनों का संग्रह किया है। उनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं:—

'समन्दर के मुक़ाबले शराब ने ज्यादा लोगों को डुबाया है।'

'शराबखोरी का बढ़िया-से-बढ़िया इलाज यह है कि बिना नशा किये इनसान नशेबाज़ की हालत को देखे।' (चीनी)

'जब शराब शरीर में जाती है, तो बुद्धि उससे बाहर निकल आती है।' (इटालियन)

'लड़ाई का शैतान जितनों को मारता है, शराब का शैतान उनसे ज्यादा लोगों को मारता है।' (जर्मन)

'अगर इनसान सिर्फ़ पानी पीये, तो वह न तो बीमार पड़े, न क़र्ज़दार बने और न उसकी औरत बेवा बने।' (नील)

'शराबखोरी एक अण्डा है, जिसे सेने पर उसमें से सब तरह की बुराइयाँ पैदा होती हैं।

'शराब पीने का एक ही मतलब है—अपनी मरज़ी से पागल बनना, और कुछ नहीं।' (सेनेका)

'शराब पीकर कुछ लोग बेवकूफ़, कुछ पशु और कुछ पिशाच या शैतान बनते हैं।'

'शराबखोरी डॉक्टर की धाय है।'

खादी का अर्थशास्त्र

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉक्टर पी० एस० लोकनाथन् की ऐडीटरी में निकलने वाले 'ईस्टर्न इकॉनॉमिस्ट' के २८ जून, १९४६ के अंक में खादी के अर्थशास्त्र पर एक लेख छपा है। कई तरह के आँकड़े देकर उसमें यह दिखाने की कोशिश की गई है कि खादी के ज़रिये हिन्दुस्तान की कपड़े की ज़रूरत पूरी करने के लिए इतनी ज्यादा तादाद में काम करने वालों की ज़रूरत होगी कि उतने लोगों को एक खादी के काम में लगा देने पर पुलिस, फ़ौज, रेल, शिक्षा या तालीम और आरोग्य या सेहत वग़ैरः राष्ट्र के लिए उपयोगी कामों के वास्ते हमारे पास आदमी नहीं बच सकेंगे, और इसलिए किसी भी हालत में खादी पूरी तरह अपनाई नहीं जा सकेगी। देहाती जिन्दगी में सिर्फ़ एक सहायक उद्योग की तरह खादी की अपनी थोड़ी जगह हो सकती है।

खादी के बारे में उस लेख की दलीलें थोड़े में यों हैं।

"१. हिन्दुस्तान को फ़ी आदमी २० चौरस गज़ के हिसाब से कपड़ा चाहिए	चौरस गज़ ८०० करोड़
२. कताई में लगने वाले लोगों की तादाद	३.३० "
३. ओटाई और धुनाई में लगने वालों की तादाद	०.५८ "
४. बुनाई में लगने वालों की तादाद	१.०६ "
	कुल ४.९४ करोड़

"यानी इस हिसाब से खादी तैयार करने के लिए क़रीब पाँच करोड़ लोग लगेंगे।

"इसके अलावा कातने के लिए ३ करोड़ ३० लाख चरखे लगेंगे, हर साल १ करोड़ चरखे नये बनवाने होंगे, और बुनाई के लिए ५ लाख करघे लगेंगे। इन सब सरंजाम को बनाने इनकी मरम्मत करने के लिए ४० लाख लोगों की जरूरत होगी।

"८०० करोड़ चौरस गज खादी के लिए ५५ लाख गांठें रूई की लगेंगी, इतनी बड़ी तादाद में कपास पैदा करना, उसकी ढुलाई करना, उसे कोठों में भरकर रखना, वग़ैरह कामों के लिए करीब दो करोड़ लोग लगेंगे, इस तरह कताई, बुनाई, सरंजाम, कपास की खेती वगैरह तमाम कामों में लगनेवाले लोगों की तादाद कोई सात करोड़ होती है। हिन्दुस्तान में काम करने लायक लोगों की तादाद फी सदी ४० के हिसाब से १६ करोड़ होती है। इसमें से ऊपर के हिसाब के मुताबिक ७ करोड़ लोग सिर्फ़ खादी-काम के लिये जरूरी होंगे। बाक़ी ९ करोड़ लोग बचते हैं। लेकिन खेती के लिये भी तो हमें ११ करोड़ लोग चाहियें। मतलब यह कि इस तरह ख़ुद खेती के लिए ही लोगों की कमी पड़ जायगी, फिर दूसरे कामों की तो बात ही क्या ?"

अब हम इन दलीलों पर एक-एक करके विचार करेंगे। पहले बुनाई की बात लीजिये। कहा गया है कि फ़ी आदमी फ़ी दिन २॥ चौरस गज के हिसाब से ८०० करोड़ चौरस गज़ खादी बुनने के लिए १ करोड़ ६ लाख बुनकर या जुलाहे लगेंगे। यहाँ जुलाहे से मतलब ख़ुद जुलाहा और उसकी मदद करने वाले सब लोग हों, तब तो बात ठीक है। लड़ाई के पहले भी हिन्दुस्तान में बुनाई का काम करनेवालों की तादाद १ करोड़ थी। इसलिए अगर आज भी हिन्दुस्तान में बुनाई के लिए १ करोड़ ६ लाख लोग लगते हैं, तो उससे कोई ख़ास फ़र्क नहीं पड़ता। जो लोग आज बुनाई के काम में लगे हैं, उन्हें बुनने के लिए काफ़ी सूत नहीं मिल रहा है। इसलिए पहले उन्हीं को पूरा काम देने की बात पेश है। खादी को अपना कर हम उन्हें पूरा काम दे सकेंगे।

चरखे, करघे वग़ैरह खादी का सरंजाम बनाने के लिए लगनेवाले ४० लाख कारीगरों का सवाल भी इसी किस्म का है। हिन्दुस्तान में आज भी ज़रूरत से ज़्यादा तादाद में करघे मौजूद हैं। इसलिए नये करघे नहीं बनाने होंगे। चरखों की संख्या भी कुछ कम नहीं है। फिर, एक

आर का बनाया चरखा सारी ज़िन्दगी काम देता है। शुरू में कुछ नये चरखे बनाने पड़े, तो भी आगे चलकर हर साल १ करोड़ नये चरखे तो किसी हालत में नहीं बनवाने होंगे। हाँ, थोड़ी मरम्मत का काम ज़रूर रहेगा।

लेकिन हम तो यह दिखाना चाहते हैं कि चरखे-करघे वग़ैरह की शकल में खादी का सरंजाम बनाने और उसकी मरम्मत करने के लिए ज्यादा कारीगरों की ज़रूरत ही न होगी। आज जहाँ जहाँ खादी की पैदावार का काम चल और बढ़ रहा है, वहाँ का अनुभव है कि गाँवों में जो कारीगर खेती वग़ैरह के औज़ार बनाने और उनकी मरम्मत वग़ैरह करने का काम करते हैं, उन्हीं से चरखे-करघे वग़ैरह बनवाने का काम भी लिया जाता है। असलियत यह है कि इन देहाती कारीगरों को भी साल में पूरे वक्त का काम नहीं मिलता। जब गाँव-गाँव में चरखे और करघे चलने लगेंगे, तब इन देहाती कारीगरों को भी पूरा काम मिल जायगा। इस तरह जो कारीगर आज देहात में मौजूद हैं, उन्हीं से सरंजाम बनाने और उनकी मरम्मत वग़ैरह कराने का काम हो जायगा। इस काम के लिए नये करीगर लगाने का सवाल ही नहीं उठता।

८०० करोड़ चौरस गज़ खादी के लिए रूई की ५५ लाख गाँठें लगेंगी, मगर उसे पैदा करने, यहाँ से वहाँ पहुँचाने, या एक जगह जमा रखने का काम नये सिरे से तो हमें करना ही नहीं है। फिर उसमें ज्यादा लोगों के लगने की बात उठ ही कैसे सकती है? आज भी हिन्दुस्तान में ६० लाख गाँठ से ज्यादा कपास पैदा होती है। उसकी खेती का, ढुलाई का और उसे कोठों में भर कर रखने का काम आज होता ही है। उलटे, हम तो यह कहते हैं कि खादी के लिए हर एक गाँव अपनी ज़रूरत की कपास, खुद पैदा करेगा और उसे गाँव में ही हिफ़ाज़त के साथ रक्खेगा। उस हालत में कपास की ढुलाई में, उसकी तिजारत में, दलाली में, और जिनिंग व प्रेसिंग फैक्टरियों में लगे हुए

लोगों की और बम्बई के बड़े-बड़े व्यापारियों वग़ैरह ऊँचे तबक़े के लोगों की कोई ज़रूरत ही न रह जायगी और इस तरह आज जो पाँच लाख से ज्यादा लोग इन कामों में लगे हुये हैं, वे खाली हो जायेंगे, और उन्हें राष्ट्र के दूसरे उपयोगी कामों में लगाया जा सकेगा।

अब सवाल कताई, धुनाई, और ओटाई में लगनेवाले चार करोड़ लोगों का रह जाता है। खादी के अर्थशास्त्र में मजदूरों से रोज़ आठ घण्टे कतवा—धुनवा कर सूत तैयार करने की बात है ही नहीं। यह सारा काम तो वस्त्र-स्वावलम्बन के, यानी अपनी ज़रूरत का कुल कपड़ा खुद बना लेने के, ख़याल से एक मददगार पेशे के तौर पर ही होगा। चुनाँचे यह कहने के बजाय कि इसमें ४ करोड़ लोग लगेंगे, हमें यह कहना चाहिये कि कताई, धुनाई और ओटाई के लिए हमको रोज ३२ करोड़ घण्टों की ज़रूरत होगी। हम चाहते हैं कि हरएक तन्दुरुस्त और भला-चंगा आदमी अपनी फ़ुरसत के वक्त में रोज कम-से-कम आध घण्टा वस्त्र-स्वावलम्बन के लिए काते। हमारे पास कुल १६ करोड़ लोग काम करने लायक़ हैं। यानी हमें इनसे रोज़ के ८ करोड़ घण्टे मिल सकेंगे। बाक़ी २४ करोड़ ऐसे लोग रह जाते हैं, जो बाहर का काम नहीं कर सकते। इन में बच्चे, बूढ़े और औरतें शामिल हैं। इन २४ करोड़ में से सात साल से कम उम्र के बच्चों और बहुत बूढ़े व बीमार लोगों की संख्या घटा देने पर भी २४ के आधे यानी क़रीब १२ करोड़ लोग ऐसे बच जाते हैं, जो कताई, धुनाई के लिये रोज़ कम-से-कम एक घण्टे का वक्त तो ज़रूर दे सकते हैं। इसके अलावा, ऊपर के १६ करोड़ में खेती का काम करनेवाले ११ करोड़ लोग हैं, जो साल में तीन महीने या रोज़ाना औसतन् दो घण्टे बेकार रहते हैं। ये लोग सहायक उद्योग के तौर पर कताई और धुनाई का काम कर सकेंगे। इस तरह हमको २२ करोड़ घण्टे इन लोगों के ८ करोड़ घण्टे १६ करोड़ के और १२ करोड़ घर में रहनेवालों के, यों कुल ४२ करोड़ घण्टे

कताई-धुनाई के लिए आसानी से मिल सकते हैं। मगर हमें तो इस काम के लिए कुल ३२ करोड़ घण्टों की ही ज़रूरत है, यानी अपनी ज़रूरत से ज्यादा घण्टे आज ही हमारे पास हैं। इसी तरह ऊपर के १२ करोड़ लोग जरूरत पड़ने पर अपनी फ़ुरसत के वक्त में से और भी ज्यादा वक्त दे सकते हैं। इसलिए फ़ी आदमी २० चौरस गज ही नहीं, बल्कि उससे ज्यादा कपड़ा भी हम देना चाहें, तो दे सकते हैं। इसके लिये हमें लोगों की फ़ुरसत के वक्त में से ही काफ़ी सूत मिल सकेगा, और दूसरे कामों में लगे हुए लोगों को इस काम में खींचने की ज़रूरत ही न होगी।

इस तरह हमें पता चलेगा कि खादी को सारे देश में फैलाने से—उसे सर्वव्यापी बनाने से—दूसरे जरूरी और उपयोगी कामों में लोगों की तंगी या कमी होने का जो अँदेशा किया जाता है, वह ठीक नहीं है। बुनाई के, सरंजाम बनाने के और कपास वग़ैरह पैदा करने के काम में जो लोग आज लगे हैं, वे ही खादी के लिए भी काफ़ी हैं। दूसरे, चूँकि कताई, धुनाई व ओटाई का काम क़ौम की फ़ुरसत के वक्त में ही हो जाता है, इसलिए खादी को सर्वव्यापी बनाने के लिए दूसरे धन्धों से लोगों को खींचने की बात ही नहीं उठती। उलटे, खादी को अपनाने से जिनिंग, प्रेसिंग वग़ैरा कपास की फैक्टरियों में लगे ५ लाख लोग और कपड़े की मिलों में काम करनेवाले ५ लाख मजदूर व कारीगर, यों कुल १० लाख लोग बच जायँगे, जिनको हम दूसरे राष्ट्रोपयोगी कामों में लगा सकते हैं।

आख़िर में कहना यह है कि हिन्दुस्तान का आर्थिक नियोजन, उसका इक्तसादी प्लैनिंग, सिर्फ़ खादी के अर्थशास्त्र की बुनियाद पर ही किया जा सकता है। एक जगह खड़े किये गये बड़े-बड़े कल-कारख़ानों से हिन्दुस्तान का आर्थिक जीवन कभी शान्त, स्वास्थ्यप्रद (सेहत बख्शनेवाला) और समृद्ध (खुशहाल) नहीं बन सकेगा।

खादी देखने में खूबसूरत नहीं होती, वह कम टिकाऊ होती है, और महँगी भी है, वग़ैरह खादी की जो कमज़ोरियाँ गिनाई जाती हैं, उनके जवाब में काफ़ी कहा जा चुका है, इसलिये यहाँ उस पर और कुछ लिखने की जरूरत नहीं।

हिन्दुस्तानी बनाम हिन्दी और उर्दू

बम्बई सरकार की ता० १६–८–'३९की गश्ती चिट्ठी में यह लिखा गया है—

"पता चला है कि लोग 'हिन्दुस्तानी' लफ्ज़ का इस्तेमाल बिना सोचे-समझे हिन्दी या हिन्दुस्तानी जबान के लिये करते हैं। मेहरबानी करके इस बात का खयाल रखिये कि हिन्दुस्तानी हिन्दी या उर्दू से अलग और निराली ज़बान है; चुनाँचे जब भी आपको इस ज़बान का ज़िक्र करना पड़ जाय, आप इसे 'हिन्दुस्तानी' लिखिये।"

६ अक्तूबर, १९४० को एक सरकारी बयान ज़ारी किया गया था। उसमें लिखा गया है—

"सन १९३८ के सितम्बर महीने में बम्बई सरकार ने प्रान्त की पाठशालाओं में हिन्दुस्तानीकी पढ़ाई शुरू करने का अपना फैसला ज़ाहिर किया था। चुनाँचे उस फ़ैसले पर अमल करने के लिये ज़रूरी कार्रवाई की गई थी और तबसे प्राइमरी स्कूलों, मिडिल स्कूलों और ट्रेनिंग स्कूलों या कॉलेजों में हिन्दुस्तानी सिखाने का इन्तज़ाम किया गया है। उसे सिखाने के सिलसिले में कुछ अमली दिक्कतें पेश आयी हैं जिन दिक्कतों पर ग़ौर करना ज़रूरी है। हिन्दुस्तानी का विकास अभी होना बाक़ी है, चुनाँचे उसमें लिखा साहित्य कम मिलता है, और स्कूलों में पढ़ाने लायक किताबें भी उसमें नहीं मिलतीं। ये उसकी कुछ खास दिक्क़तें हैं। फ़िलहाल हिन्दुस्तानी की जो किताबें पढ़ायी जाती हैं, उनमें

बरती गई ज़बान और दिये गये सबक़ पाठ्य वस्तु की दृष्टि से खामी वाले मालूम हुये हैं। कहा जाता है कि इन किताबों की ज़बान में ठेठ हिन्दी के लफ्ज़ ज्यादा तादाद में हैं, और उनके कुछ सबक़ों का मज़मून विद्यार्थियों के लिये ठीक नहीं है। दूसरे, उर्दू और हिन्दुस्तानी ज़बानों के शब्द-भण्डार में दोनों ज़बानों में एक-से पाये जाने वाले शब्द इतने ज़्यादा हैं कि उर्दू मदरसों में हिन्दुस्तानी सिखाने का आग्रह (इसरार) रखना ग़ैरज़रूरी है। इस सारे मसले पर अच्छी तरह ग़ौर करने के बाद सरकार अब यह सुझाती है कि अगरचे दूसरे मदरसों में हिन्दुस्तानी सिखाने के ख़िलाफ़ कोई खास एतराज़ नहीं है, तो भी सूबे में उर्दू पढ़ाने वाली जो संस्थायें (इदारे) हैं, यानी जिनमें उर्दू के ज़रिये तालीम दी जाती है, उन प्राइमरी स्कूलों, मिडिल स्कूलों और ट्रेनिंग स्कूलों या कॉलेजों को अपनी पढ़ाई में हिन्दुस्तानी की तालीम दाखिल करने से बरी किया जाय।"

सन् १९४१ में जारी किये गये एक दूसरे गश्ती ख़त के ज़रिये इसी तरह हिन्दी पढ़ाने वाली पाठशालाओं को हिन्दुस्तानी पढ़ाने से मुक्ति दी गई है। इस तरह जहाँ पढ़ाई का ज़रिया हिन्दी या उर्दू न हो, वहाँ, उन मदरसों में, हिन्दुस्तानी सिखाने की बात तय हुई। सवाल यह है कि ऐसी हालत में आम लोगों की राय से बनी हुई सूबे की मौजूदा सरकार को क्या करना चाहिये।

अगर यह माना जा सके कि सूबे की मौजूदा सरकार आम लोगों की राय से बनी है, तो उससे हमें इस सवाल का जवाब मिल जाता है। अगर हिन्दी पाठशालायें प्राइमरी और मिडिल स्कूलों में राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी सिखाना चाहें, तो वह सिखाई जानी चाहिये। सहज ही इस बात का फ़ैसला इन स्कूलों में पढ़ने वाले लड़कों और लड़कियोंके माँ-बापों को करना होगा। अगर उन्हें इसकी ज़रूरत न मालूम होती हो और यह चीज़ उन पर जबरदस्ती लादने की कोशिश की जाय, तो लोगों की

सरकार होने का उसका दावा टिक न सके। मैं माँ-बापों को ज़रूर यह सलाह दूँगा कि वे अपने बच्चों को हिन्दुस्तानी सिखाने की माँग करें। असल में हिन्दुस्तानी हिन्दी और उर्दू का मिलाजुला रूप है, और वह नागरी व फ़ारसी दोनों लिखावटों में लिखी जाती है। यह हक़ीक़त कभी भूलनी न चाहिये। अगर माँ-बाप सिर्फ़ हिन्दी या सिर्फ़ उर्दू और कोई एक ही लिपि चाहते हों, तो वे अपनी यह चीज़ उस सरकार पर लाद नहीं सकते, जो उनकी इस बात को मानती न हो और वैसा करने के लिये नाखुश हो। दोनों दल अपनी-अपनी मरज़ी के मुताबिक़ बरतने को आज़ाद हैं।

यहाँ यह सवाल मौजूँ नहीं कि आया हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा है, या कि वह राष्ट्रभाषा यानी क़ौमी ज़बान हो सकती है या नहीं। 'हरिजन सेवक' के पिछले अंकों में इस मसले पर अई दफ़ा लिखा जा चुका है।

ज़हर का उतार

कलकत्ते में हाल में ही जो शर्मनाक और अफ़सोसनाक वारदातें हो गईं, उनका हूबहू बयान देने के बाद एक भाई पूछते हैं—"ऐसे मौक़ों पर हमारा फ़र्ज़ क्या होना चाहिये? ऐसे वक्त कांग्रेस तो आम जनता को कोई साफ़ हिदायतें नहीं देती। दूर बैठकर अहिंसा की नसीहत देने से कोई फ़ायदा नहीं होता। अगर इस बार कलकत्ते में अहिंसात्मक विरोध किया जाता, तो उसका नतीजा यह होता कि एक-एक हिन्दू मारा जाता और हिन्दुओं की तमाम जायदाद बरबाद हो जाती।"

कलकत्ते की वारदातों पर कांग्रेस की वर्किंग कमेटी का जो ठहराव अखबारों में छप चुका है, उसके आखिरी हिस्से में कमेटी ने साफ़ लफ़्ज़ों में राह दिखाई है। कमेटी ने कहा है कि "आपस की मार-काट धमकी और हिंसासे बन्द नहीं हो सकती। उसका इलाज तो बाहमी समझौता, दोस्ताना बातचीत और अगर ज़रूरत हो तो सालिसी (पंच) फ़ैसलेसे

ही हो सकता है।" इस साफ़, सीधो और क़ाबिल अमल बात को माननेके लिये अहिंसामें विश्वास (एतक़ाद) की ज़रूरत नहीं। बात यह है कि अगर कलकत्तेके तमाम हिन्दू जान-बूझकर, हिम्मतके साथ, बिना बदला लिये मर जाते, तो वे न सिर्फ़ हिन्दू धर्म को, बल्कि समूचे हिन्दुस्तान को बचा लेते, और उससे हिन्दुस्तान में इस्लाम भी शुद्ध या पाक बन जाता।

लेकिन असल में हुआ क्या? हमारी आपस की जंगली मार-काट को बन्द करने के लिये अंग्रेज़ी फ़ौज को बीच में पड़ना पड़ा। उसकी इस दस्तन्दाज़ी से न हिन्दुओं को कोई फ़ायदा पहुँचा, न मुसलमानों को। फ़र्ज़ कीजिये कि कलकत्ते का यह ज़हर सारे देश में फैल जाय, और ब्रिटिश संगीनें और बन्दूकें लोगों को एक-दूसरे पर छुरेबाज़ी करने से रोकें, तो इसका मतलब क्या होगा? यही कि अभी काफ़ी अरसे तक हिन्दुस्तान को ब्रिटेन की या उसके जैसी सल्तनतकी ग़ुलामी करनी होगी। और, यह ग़ुलामी उस वक्त तक बनी रहेगी, जब तक हिन्दू-मुसलमान दोनों के होश ठिकाने न आ जायँ। ऐसा तभी होगा, जब या तो तीसरी किसी ताक़त की मदद के बिना वे आपस में लड़-भिड़कर लस्तपस्त हो जायँगे, और बाहमी समझौता कर लेंगे, या जब दो में से कोई एक दल बड़ी-से-बड़ी जोखिम उठाकर भी हिंसा छोड़ अहिंसा को अपना लेगा। आज हालत यह है कि आम रियाया को आज कल की लड़ाई के नये-से नये हथियार चलाने की न तो कोई तालीम मिली है, और न ऐसे कोई हथियार ही उसके पास हैं। चुनाँचे आपस की मार-काट में किसी को कोई कामयाबी तो मिल ही नहीं सकती। अहिंसा के लिए एक ही चीज़ की ज़रूरत है—हमें अपने दिल में यह तय कर लेना चाहिये कि हम बदला लेने की गरज़ से भी किसी को नहीं मारेंगे, और बिना बदला लिये, हिम्मत के साथ मौत का सामना करेंगे। अहिंसा पर मेरा यह कोई 'सरमन' प्रवचन या उपदेश नहीं, बल्कि एक सीधी-सादी समझ की बात है। यही क़ुदरती जिन्दगी का एक आम क़ानून है। अगर हमें इस

क़ानून में अटूट श्रद्धा हो, बेइन्तहा एतक़ाद हो, तो बुरी-से-बुरी खिझलाहट की हालत में भी हम सब्र से काम लेंगे, चुपचाप सब सहेंगे, मगर बदला लेने का खयाल तक मन में न लावेंगे। इसे मैंने बहादुरों की अहिंसा कहा है।

अफ़सोस इस बात का है कि आज किसी बड़े पैमाने पर इस तरह की बहादुराना अहिंसा हम में पाई नहीं जाती। बाज़ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि ऐसी अहिंसा का पालन तो एक छोटा गिरोह भी नहीं कर सकता, फिर करोड़ों की तो बात ही क्या ? वे कहते हैं कि इस तरह की अहिंसा तो बिरले लोग ही दिखा सकते हैं। अगर अहिंसा ऐसे कुछ ही लोगों के लिये हमेशा महफ़ूज़ रहे, तो कहना होगा कि वह मानव जाति के, इनसानी दुनिया के, किसी काम की नहीं।

सो कुछ भी क्यों न हो, इतनी बात साफ़ है कि अगर आम तौर पर लोग बहादुरों की अहिंसा दिखाने के लिए तैयार नहीं हैं, तो उन्हें अपने बचाव के लिए हिंसा के इस्तेमाल की तैयारी रखनी होगी। इस हिंसा में किसी तरहकी जालसाज़ी या धोखेबाज़ी न बरती जानी चाहिये। इसमें सिर्फ़ अपने बचाव की बात ही सामने रहनी चाहिये। इसमें किसी तरह की नामर्दगी या जङ्गलीपन नहीं होना चाहिये। इसलिये इसमें कोई पोशीदगी या लुकाछिपी न होगी। पीछे से आकर पीठ में छुरा भोंकने या गिरफ्तारी से बचने के लिए छिपते फिरने की इसमें कोई गुंजाइश न रहेगी। मैं जानता हूँ कि हम लोग निहत्थे हैं और हथियार चलाना नहीं जानते। यह अच्छी बात है या नहीं, इस पर मुख्तलिफ़ रायें हो सकती हैं। लेकिन इससे तो कोई इनकार नहीं कर सकता कि अपने बचाव के लिये इनसान को हथियार चलाने की तालीम लेना ज़रूरी नहीं। इसके लिए तो मज़बूत हाथों और मज़बूत दिल की ही ज़रूरत होती है।

ज़ाहिर है कि दूसरे को चोट पहुँचाने में हिंसा है, लेकिन दिल में दूसरे को चोट पहुँचाने का खयाल रखते हुए भी डरपोकपन की वजह से

अपनी या अपने पड़ोसी की हिफ़ाज़त के लिए तैयार न होना तो शायद और भी बुरी हिंसा है।

ऐसी हालत में नेता लोग क्या करें? नये मंत्री या वज़ीर क्या करें? उन्हें हमेशा क़ौमी एकता पैदा करने की कोशिश करनी चाहिये—किसी से डरकर नहीं, बल्कि इस ख़याल से कि वह ज़रूरी है, बुनियादी चीज़ है। मैं मुसलमानों को या ग़ैरहिन्दुओं को अपना सगा भाई समझता हूँ। यह मैं किसी को ख़ुश करने के लिए नहीं समझता, बल्कि इसलिये समझता हूँ कि वे भी उसी भारत माता के—मादरे हिन्द के—बच्चे हैं, जिसका एक बच्चा मैं हूँ। चूँकि वे मुझसे नफ़रत करते हैं या मुझे अपना भाई नहीं समझते इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि वे मेरे भाई नहीं हैं। बावजूद उनकी नाराज़गी के मुझे उन्हें अपनी मुहब्बत से जीतना ही है। नये मंत्रियों या वज़ीरों को यह फैसला कर लेना चाहिये कि वे काली या गोरी किसी भी ब्रिटिश फ़ौज की मदद नहीं लेंगे और न ब्रिटिशों की तैयार की हुई पुलिस का ही इस्तेमाल करेंगे। न फ़ौज, न पुलिस, कोई भी हमारा दुश्मन नहीं। लेकिन अब तक फ़ौज और पुलिस का इस्तेमाल लोगों पर गुलामी का जुआ लादने में हुआ है, उनकी मदद करने के लिए नहीं। इसलिये अब तो फ़ौज और पुलिस का इस्तेमाल तामीरी कामों के लिए किया जाना चाहिये, क्योंकि वह काम उनके बूते का है। फ़ौज को तो ख़ास तौर पर इसकी तालीम मिली होती है। फ़ौज वाले बात-की-बात में तम्बुओं का शहर खड़ा कर सकते हैं। वे जानते हैं कि पानी किस तरह मुहैया किया जा सकता है, कैसे उसे साफ़ रक्खा जा सकता है, और किस तरह सफ़ाई का पूरा पक्का इन्तज़ाम किया जा सकता है। इसमें शक नहीं कि वे मारना और मारते-मारते मरना भी जानते हैं। उनके काम के इस पहलू से आम जनता अच्छी तरह वाक़िफ़ है। लेकिन किसी भी हालत में यह उनका सबसे बड़ा और संगीन काम नहीं। हमें तो उनके रचनात्मक या तामीरी काम की ही क़दर, तारीफ़

और नक़ल करनी चाहिये। मार-काट का हैवानियत भरा जो काम वे करते हैं, वह इनसानियत के ख़िलाफ़ है, मगर दूसरा यानी तामीरी काम ख़ास तौर पर इनसानियत का काम है और वह साफ़ व पाक काम है। हमें चाहिये कि हम अपनी कोशिश भर फ़ौज को इनसान बनायें और उसके अच्छे कामों की नक़ल करें। यह कोशिश करने लायक़ है, लेकिन ऐसी कोशिश वे लोग ही कर सकते हैं, जो फ़ौजियों के आसपास की शान-शौकत और तड़क-भड़क से चौंधिया नहीं जाते, और उसके दबदबे में नहीं आते। यह तभी हो सकेगा जब हम तन और मन से बदले का खयाल छोड़कर मौत का सामना करने को तैयार हो जायँगे।

भंगियों की हालत

स०—यों तो इस मज़मून पर आप पहले भी कई बार लिख चुके हैं, फिर भी मैं चाहूँगा कि आप एक दफ़ा और म्युनिसिपल कमेटियों और दूसरे हाक़िमों के और निजी तौर पर भंगियों से काम लेने वाले लोगों के फ़र्ज़ पर कुछ लिखें, और उनका ध्यान इस तरफ़ दिलावें कि सफ़ाई के काम के लिए भंगियों को मुनासिब सामान मुहैया कर दें। मसलन्, पाखाने कमाने के लिए भंगियों के पास लोहे के बन्द मुँहवाले डोल नहीं होते, चुनांचे बारिश के दिनों में जिन टोकनियों और थैलों में वे पाख़ाना कमाते हैं, उनसे गन्दा पानी टपकता है, और वह बेचारे मेहतरों के सर पर गिरता है। पाख़ाना-सफ़ाई का सारा काम इतने साफ़ तरीक़े से होना चाहिये कि हाथ या बदन का कोई हिस्सा गन्दा न होने पाये। अगर ऐसा हो सके, तो समाज में इस काम की अपनी इज़्ज़त बढ़ जाय, जो आज इसे नसीब नहीं। पाख़ाना-सफ़ाई और सड़कों वग़ैरह की सफ़ाईके लिए ज़रूरी सामान मुहैया करने के अलावा भंगियों को सफ़ाई

के काम की ज़रूरी तालीम भी दी जानी चाहिये। सफ़ाई के हक़ में यह ज़रूरी है कि मुक़ामी और सूबों के हाकिम इस काम को अपने हाथ में लें।

ज०—इस मामले में मैं इस बात पर ज़ोर दूंगा कि पाख़ाना कमाने के बरतनों और झाड़ू वग़ैरह चीज़ों के लिए ज़रूरी क़ानून ही बन जाने चाहियें, ताकि मैले और कूड़े-करकट को हाथ लगाने की ज़रूरत न रह जाय। साथ ही, मेहतरों और भंगियों के लिए काम के वक़्त पहनने की पोशाक का भी एक ऐसा सादा नमूना तय कर दिया जाय, जिससे उन्हें काम करने में आसानी हो। इन्स्पेक्टरों और मुक़द्दमों को भी सफ़ाई के इस उपयोगी काम की तालीम दी जाय, बजाय इसके कि वे अपने मातहतों से ज्यों-त्यों और ज़बरदस्ती काम लेते रहें। आज जिस तरीके से काम लिया जाता है, उसमें काम कम-से-कम और गन्दगी ज्यादा-से-ज्यादा होती है, और रिश्वतख़ोरी, बदमाशी और बदचलनी का ज़ोर रहता है।

हम सब हिन्दुस्तानी हैं

गोआ के एक रोमन कैथोलिक विद्यार्थी को एक बहुत अफ़सोसनाक तज़रबा हुआ। बम्बई में उसके साथी विद्यार्थियों (तालिब-इल्मों) ने उससे कहा—"तुम पुर्तगाली हो, और इसलिये परदेसी हो।" जब उसने अपने साथियों से कहा कि हिन्दुओं की तरह गोआ के रोमन कैथोलिकों में भी कई जातें हैं, तो उसकी बात पर किसीने भरोसा नहीं किया। आज हम अपनी सारी तंगदिली को छोड़ कर यह दावा करने लगे हैं कि हम आज़ाद हिन्दुस्तानी हैं—हम न तो अंग्रेज़ों के, न पुर्तगालियों के और न दूसरी किसी विदेशी हुकूमत के गुलाम हैं। लेकिन जब तक हमारा यह दावा पूरा-पूरा साबित नहीं होता, तब तक हम ऐसी भूलें करते ही रहेंगे। अगर उन्हीं विद्यार्थियों को सच्ची तालीम

मिली होती तो, वे अपने दोस्त को गोआवाला न कहकर हिन्दुस्तानी कहने में और अपने-आपको बम्बईवाला कहने के बजाय हिन्दुस्तानी कहने में फ़ख्र मानते। हर आदमी का धर्म उसकी अपनी निजी चीज़ है, लेकिन उसकी राष्ट्रीयता बहुत दूर के और बड़े महत्त्व के नतीजे पैदा करनेवाली एक समाजी चीज़ है। हिन्दू धर्म को छोड़कर दूसरा धर्म अख्तियार करनेवालों में भी जातियों का बना रहना हिन्दू धर्म की एक खामी है। हर एक हिन्दू को इस बारे में विचार करना चाहिये और फिर मेरे साथ भंगी बन जाना चाहिये।

राम-नाम के बारे में भ्रम

एक दोस्त लिखते हैं :

"आपने राम-नामसे मलेरिया का इलाज सुझाया है। मेरी मुश्किल यह है कि जिस्मानी बीमारियों के लिए रूहानी ताक़त पर भरोसा करना मेरी समझ से बाहर है। मैं पक्की तरह से यह भी नहीं जानता कि आया मुझे अच्छा होने का हक़ भी है या नहीं। और क्या ऐसे वक्त जब मेरे देसवाले इतने दुःख में पड़े हैं, मेरा अपनी मुक्ति के लिए प्रार्थना करना ठीक होगा ? जिस दिन मैं राम-नाम समझ जाऊँगा, उस दिन मैं उनकी मुक्ति के लिये प्रार्थना करूँगा, नहीं तो मैं अपने-आपको आज से ज्यादा ख़ुदगरज़ महसूस करूँगा।"

मैं मानता हूँ कि यह दोस्त सत्य के सच्चे तलाश करनेवाले हैं। उनकी इस मुश्किल की खुल्लमखुल्ला चर्चा मैंने इसलिए की है कि उन-जैसे बहुतों की मुश्किलें इसी क़िस्म की हैं।

दूसरी ताक़तों की तरह रुहानी ताक़त भी मनुष्य की सेवा के लिए है। सदियों से थोड़ी-बहुत सफ़लता के साथ शारीरिक (जिस्मानी) रोगों को ठीक करने के लिए उसका उपयोग होता है। इस बात को छोड़

भी दें, तो भी अगर जिस्मानी बीमारियों के इलाज के लिए कामयाबी के साथ उसका इस्तेमाल हो सकता हो, तो उसका उपयोग न करना सख्त ग़लती है। क्योंकि आदमी माद्दा भी है और रूह भी। और, इन दोनों का एक-दूसरे पर असर होता है। अगर आप मलेरिया से बचने के लिए कुनैन लेते हैं, और इस बात का खयाल भी नहीं करते कि करोड़ों को कुनैन नहीं मिलती, तो आप उस इलाज के इस्तेमाल से क्यों इनकार करते हैं, जो आपके अन्दर है? क्या सिर्फ़ इसलिए कि करोड़ों अपनी जहालत की वजह से उसका इस्तेमाल नहीं करते? अगर करोड़ों अनजाने या हो सकता है, जान-बूझकर भी, गन्दे रहें, तो क्या आप अपनी सफ़ाई और सेहत का ध्यान छोड़ देंगे? सखावत की ग़लत कल्पना के कारण अगर आप साफ़ नहीं रहेंगे, तो गन्दा और बीमार रहकर आप उन्हीं करोड़ों की सेवा का फ़र्ज़ भी अपने ऊपर नहीं ले सकेंगे, और यह बात तो पक्की है कि आत्मा का रोगी या गन्दा होना (उसे अच्छी और साफ़ रखने से इनकार करना) बीमार और गन्दा शरीर रखने से भी बुरा है।

मुक्ति का अर्थ यही है कि आदमी हर तरह से अच्छा रहे। फिर आप अच्छे क्यों न रहें? अगर अच्छे रहेंगे, तो दूसरों को अच्छा रहने का रास्ता दिखा सकेंगे, और इससे भी बढ़कर अच्छा होने के कारण आप दूसरों की सेवा कर सकेंगे। लेकिन अगर आप अच्छे होने के लिए पेनिसिलिन लेते हैं, हालाँकि आप जानते हैं कि दूसरों को वह नहीं मिल सकती, तो ज़रूर आप सरासर खुदग़रज़ बनते हैं।

मुझे खत लिखनेवाले इन दोस्त की दलील में जो गड़बड़ी है, वह साफ़ है।

हाँ, यह ज़रूर है कि कुनैन की गोली या गोलियाँ खा लेना राम-नाम के उपयोग के ज्ञान को पाने से ज्यादा आसान है। कुनैन की गोलियाँ खरीदने की क़ीमत से इसमें कहीं ज्यादा मेहनत पड़ती है। लेकिन यह मेहनत उन करोड़ों के लिए उठानी चाहिये, जिनके नाम

पर और जिनके लिये लेखक राम-नाम को अपने हल से बाहर रखा चाहते हैं।

हवा में उपदेश करना

मि० डाउनेस मसीह की हुकूमत में मानने वाले थे। मेरी तरह वे भी एक सरफिरे थे। बहुत साल हुए, डरबन में वे मेरे मेहमान थे। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा कि जो लोग सुनना चाहें, उन्हें वे सादी ज़िन्दगी के बारे में उपदेश किया चाहते हैं। मरक्यूरी लेन में एक घण्टे के लिये एक गिरजाघर का हॉल माँगने में वे कामयाब हो गये और मुझसे कहने लगे कि मैं सदर बनूँ। मैं दक्षिण अफ्रीका में अभी नया नया था। शायद यह सन् १८९४का ज़िक्र है। मैंने समझाया कि अगर वे मुझे सभापति बनायें, तो किसी सुनने आनेवालेकी आशा न रक्खें। लेकिन उन्होंने एक न सुनी। उन्होंने तयशुदा वक्त पर अपना उपदेश शुरू कर दिया। सुननेवाला सिर्फ़ एक ही था। मैंने कहा भी कि कुछ देर और ठहर जाइये, औरोंको आने दीजिये, लेकिन वे नहीं माने। खुदा का वक्त ज़ाया करने में वे हिस्सेदार नहीं बनना चाहते थे। बेपरवाही से वे अपनी तक़रीर करते चले गये। जहाँ तक मुझे याद है, सिर्फ़ दस साल से छोटे कुछ बच्चे तक़रीर के बीचमें घूमते आ निकले थे। जब मैं देहली में था, तो यह क़िस्सा मैं हॅरिस अलेक्ज़ेण्डर को सुना बैठा। उन्होंने बदले में एक क्वेकर स्टीफन ग्रेलेट की इससे भी अजीब कहानी सुनाई, जिन्होंने बिलकुल खाली जगह को अपना वाज़ (उपदेश) सुनाया था। मैंने उन्हें कहा कि इस वाक़ये की सही-सही कहानी मुझे 'हरिजन' के पढ़नेवालों के लिए भेजें, क्योंकि ईश्वर में ज़िन्दा विश्वास का यह एक आला नमूना है। जो क़िस्सा उन्होंने मुझे भेजा है, सो नीचे देता हूं।

"स्टीफन ग्रेलेट १९ वीं सदी के शुरू में एक मशहूर क्वेकर उपदेशक थे। शुरूमें वे फ्रान्स छोड़ कर आये थे। उनका नाम था एएटेने डी ग्रेलेट। लन्दनमें कुछ वक्त रहने के बाद वह अमेरिका चले गये और अपनी ज़िन्दगी के आखिरी हिस्से में एक पादरी की हैसियत से अटलाण्टिक सागर के दोनों तरफ़ दूर-दूर तक घूमे। जो वाक़या यहाँ बयान किया जाता है, वह उनके रोज़नामचे में तो नहीं है, लेकिन उनकी लड़की का बताया हुआ है। और श्री डब्ल्यू० डब्ल्सू० कम्फर्ट ने, जिन्होंने उनकी सबसे ताज़ा कहानी लिखी है, इसे सच माना है। लेकिन इसकी ठीक तारीख नहीं बताई जा सकती।

"स्टीफन ग्रेलेट ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे कि वह उन्हें अपनी मरजी बताये। अन्दर से आवाज़ आई कि अमेरिका के पीछे के जंगलों में बहुत दूर अन्दर जाओ और वहाँ के लकड़हारों को उपदेश दो। कहाँ जाने का हुक्म है, यह जानने के लिए वे दुआ कर रहे थे कि उस जंगल का एक हिस्सा उनकी नज़र के सामने फिर गया, जहाँ वे एक दफा जा चुके थे। लेकिन उसे वे अब भूल चुके थे। दिल के अन्दर एक आवाज़ सुनाई दी—साफ़, पर इतनी धीमी कि सिर्फ़ वही सुन सके। 'वहाँ वापस जाओ और जाकर उजाड़ में लोगों को ईश्वर का सन्देश सुनाओ।' उन्होंने अपने बीबी-बच्चों को छोड़ा। जाते-जाते ख़ुशी की बाढ़ उनकी रूह पर फैल गई। ज्योंही वे उस जगह के पास पहुँचे, वे काँपे और बेहद ख़ुश भी हुए। लेकिन उन्होंने उस जगह को खामोश और बीरान पाया। लकड़ी का एक ही बड़ा झोंपड़ा रह गया था। वह भी साफ़ पता दे रहा था कि कई दिनों से वह बिलकुल इस्तेमाल नहीं किया गया है। लकड़हारे जंगल में अन्दर जा चुके थे और शायद हफ्तों तक उनके लौटने की उम्मीद न थी। अन्दर की आवाज़ को उन्होंने ग़लत तो नहीं समझा? नहीं, वे यह मान सकते थे। उन्हें क्या करना चाहिये? दिल-ही-दिल में उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की। जंगल की बिन

हवा की खामोशी से जवाब आया : 'अपना सन्देश सुनाओ। यह तुम्हारा सन्देश नहीं, मेरा सन्देश है।' वह झोंपड़े के अन्दर गये। कमरे के दूसरे सिरे पर पहुँच कर इस तरह खड़े हो गये, जैसे कोई सौ या दो सौ आदमी बड़े शौक़ से उनका उपदेश सुनने के लिए तैयार हों। और उस खाली झोंपड़े को इतनी ताक़त से तक़रीर सुनाई जितनी उन्होंने सारी जिन्दगी में अपने में महसूस नहीं की थी। उन्होंने ईश्वर के प्रेम का जिक्र किया, जो दुनिया में सब से बड़ी चीज़ है। यह बताया कि किस तरह पाप आदमी और परमात्मा के बीच में एक दीवार खड़ी कर देता है। लेकिन यह दीवार हजरत ईसा के प्रसाद (करम) से गिर जाती है, क्योंकि वे इनसानों के बीच में आकर रहने के ख्वाहिशमन्द हैं। स्टीफन ग्रेलेट को गँवार, जंगली और खामोश लकड़हारों का खयाल आया और हरएक के लिए उनके दिल में प्रेम उमड़ उठा: ईश्वर का प्रेम तो उनके लिये कहीं ज्यादा होगा।' उन्होंने ऊँची आवाज से इन लकड़हारों के लिये प्रार्थना की। आखिर जब इससे थककर वे चूर हो गये, तो सामने जो तख्ते पड़े थे, उन पर अपनी बाहें डाल दीं और अपने हाथों में अपना मुँह छिपा लिया। बहुत वक्त गुजर गया। अब भी वहाँ कोई न आया। उन्हें एक गन्दा-सा गिलास नज़र आया। उन्हें लगा, जैसे यह उनकी हँसी उड़ाने के लिये छोड़ दिया गया हो। दिल-ही-दिल में वे उस गिलास से नफ़रत करने लगे। और, उन्होंने उसका मुकाबला उन खूबसूरत बरतनों से किया, जो लिमोजेस (फ्रान्स) वाले उनके अमीराना घर में थे। क्या उन्होंने खूबसूरती और आराम को इसलिए छोड़ा था कि एक आवाज़ की बात मानकर एक बेवकूफ़ की तरह सिर्फ एक टूटे गिलास को उपदेश सुनाने आयें? वे इन विचारों के साथ लड़े और इन पर विजय पायी। गिलास को लिया, एक छोटे-से नाले पर बड़े ध्यान से धोया, उसमें पानी लेकर पीया, अपनी जेब में से थोड़ी सूखी रोटी निकाली और यह महसूस किया मानो एक जीवन देनेवाली

हस्ती ने उन्हें अपनी बाहों में ले लिया हो। घर लौटे तो उन्हें लगा, जैसे वे एक सपने की दुनिया में हों। और ऐसा महसूस करने लगे कि वे अकेले नहीं हैं। कई साल बीत गये। एक दिन वे क्वेकरों की अपनी टोपी और कोट पहने हुए लन्दन के पुल पर से गुजर रहे थे। बहुत भीड़ थी। एकाएक किसी ने उन्हें पकड़ लिया और रूसी आवाज़ में कहा : 'अब तो पकड़े गये। आखिर मैंने तुम्हें ढूँढ़ ही लिया न?' स्टीफन ग्रेलेट ने समझाने की कोशिश की : 'भाई, मेरे खयाल में तुमसे ग़लती हुई है।' 'नहीं, मुझसे ग़लती नहीं हुई। अगर एक आदमी के लिये तुम बरसों दुनिया का कोना कोना छानते फिरो और बाद में वह तुम्हें मिल जाय, तो तुम उसे पहचानने में ग़लती नहीं कर सकते।' गुजरनेवाले लोग क्या खयाल करेंगे, इससे बिलकुल बेपरवाह होकर उस आदमी ने ऊँची आवाज़ में अपनी कहानी सुनानी शुरू की। जिस वक्त स्टीफन ग्रेलेट ने समझा था कि वे सिर्फ़ हवा में उपदेश कर रहे हैं, उस वक्त उस आदमी ने उन्हें सुना था। उसने समझा था, स्टीफन ग्रेलेट कोई पागल है, जो बेंच पर खड़ा हवा से बातें कर रहा है। लेकिन उसने उन्हें छेदों में से सुना था। 'तुम्हारे लफ्ज एक छेद में से मेरे मन के अन्दर घुस गये, हालाँकि कोई झोंपड़ा ऐसा नहीं होगा, जिसकी दीवारें इतनी मोटी हों, जितनी मेरे दिल की थीं।' उसे इतनी शर्म आई कि वह अपना मुँह दिखाना नहीं चाहता था। इसीलिये वह अपने कैम्प को वापस खिसक गया और हफ्तों परेशान रहा। आखिर एक इञ्जिल (बाइबिल) उसके हाथ लगी। दूसरे साथी किस तरह उसकी हँसी उड़ाते थे! उसे गुम हुई भेड़ के बारे में बाइबिल का एक टुकड़ा मिल गया। 'जंगल में हमें जो कुछ मिले, हम आपस में बराबर-बराबर बाँट लेते हैं। आपकी तरह मैंने भी इस टुकड़े के बारे में अपने आदमियों को सब कुछ बताया। जब तक उन में से हरएक ईश्वर की तरफ नहीं मुड़ा, मैंने उन्हें चैन नहीं लेने दिया। उनमें से तीन तो दूसरे जिलों में प्रचार

करने भी चले गये। आपके उस सन्देश से जो आपने समझा था कि आप किसी को भी नहीं दे रहे हैं, एक हजार आदमी भले गड़रिये के पास वापस आ गये हैं।'

खादी के साथ बेवफ़ाई

एक भाई लिखते हैं;

"३१ जुलाई, १९४६ की शाम को ६ बजे कॉलेज के १३ विद्यार्थी (खादी पहनने वाले) एक मशहूर कांग्रेसी के पीछे-पीछे, जो कौंसिल के मेम्बर भी हैं, खादी-भण्डार में आये। खादी की कमी होने से बिक्री बन्द कर दी गई थी। खादी के १३ थान ऊपर की आलमारी में रख दिये गये थे, क्योंकि उनसे लगभग १५०० खद्दरधारियों की जरूरतें पूरी नहीं की जा सकती थीं। वे लोग एकदम माले पर चढ़ गये, पूरे १३ थान ज़बरन् उठा लिये, बिना सूत दिये मैनेजर को क़ीमत लेने के लिए कहा और जब मैनेजर ने इसका विरोध करते हुए दाम लेने से इनकार किया, तो वे बिना दाम दिए कपड़ा लेकर चलते बने।

"क्या पुलिस थाने पर जाकर उनके खिलाफ़ नालिश करना मैनेजर का फ़र्ज़ नहीं था, या उन्हें कपड़ा ले जाने से रोकने के लिए उसे क्या करना चाहिये था?"

अपनी जान को खतरे में डालकर भी मैनेजर को अहिंसक ढङ्ग से उनकी इस लूट का सामना करना चाहिये था। मैनेजर को उन गुण्डों की नालिश करने का हक़ है, बशर्तें कि लूट का माल गुनहगारों के खुद लौटाने के सारे रास्ते खोज लिये गये हों और वे नाकाम साबित हुए हों।

आजकल विद्यार्थियों का हुल्लड़बाज़ी एक कहावत बन गई है। अगर एक 'मशहूर कांग्रेसी' ने इन विद्यार्थियों को भड़काया, तो यह

शर्म की बात थी। लूटी हुई खादी को काम में लाना इस दर्दनाक बात का सबूत है कि लूटने वाले स्वराज का क-ख-ग-नहीं जानते—यह तो खादी का भद्दा मज़ाक है।

बच्चा क्या सिखा सकता है?

मद्रास में अरुणा नामकी एक पाँच बरस की लड़की है। जब मैं पिछली जनवरी को मद्रास में था, तब मुझे सूत कातते देखकर उस लड़की को भी कातने की धुन सवार हुई। खादी की हवा में तो वह रहती ही थी। उसके माँ-बाप उस पर कोई चीज़ ज़बरन् लादना नहीं चाहते थे। अपने आसपास की हवा में से वह देखकर जो कुछ सीख लेती, उसी से वे तसल्ली मानते। इसलिए जब अरुणा ने ख़ुद कातने की इच्छा ज़ाहिर की, तो उन्होंने इस दिशा में उसे ख़ुशी-ख़ुशी बढ़ावा दिया। नतीजा यह हुआ कि दिन भर की मेहनत से अरुणा एक पूनी तैयार कर सकी। और जब अपनी बनाई हुई पूनी को उसने मुझे कातते देखा, तो उसकी ख़ुशी का पार न रहा। मैंने उसकी पहली पूनी की खामी उसे समझाई। उस खामी को दूर करने में उसके माँ-बाप ने उसे हर तरह से मदद दी। तब से वह बच्ची अच्छी पूनी बनाने लगी है और नियम से कातने लगी है। इस तरह इस छोटी बच्ची ने एक ही वक्त में दो बातें सीखीं। एक तो सफ़ाई से रूई पींजकर अच्छी पूनी बनाना और दूसरी, लोगों को अपनी मेहनत की भेंट देना। अक्सर बच्चे दूसरों को भेंट देने के लिए अपने माँ-बाप से पैसे लेते हैं। लेकिन उसका पुण्य तो असल में माँ-बाप को ही लगता है। मगर अपनी मेहनत से तैयार की हुई चीज़ किसी को भेंट देना अलग बात है। और क्या वही सच्ची भेंट नहीं है?

विकेन्द्रीकरण

(हुकूमत को कई मरकज़ों में बाँटना)

औंध राज के अप्पासाहब पन्त लिखते हैं :

"अंग्रेज़ों ने इस मुल्क में अपना अड्डा क़ायम रखने के लिए जुदा जुदा नौकरियों की शकल में एक काफ़ी कारगर ज़रिया खड़ा कर रक्खा है। यह ज़रिया एक ख़ास तरह की शान्ति और व्यवस्था या इन्तज़ाम, और खासकर 'श्मशान की शान्ति' क़ायम रखनेमें भले ही कामयाब हो सकता है।

'लेकिन मुझे लगता है कि अंग्रेज़ों का यह ज़रिया हमारे मुल्क में सच्ची लोकशाही को जन्म देने के बजाय उसके रास्ते में रोड़े अटकाने-वाला ही साबित होगा। इसलिए हमें इस सारे सड़े-गले राज-तंत्र (राज के इन्तज़ाम) को ठुकराकर जाती तज़रबे से ऐसा नया इन्तज़ाम क़ायम करना होगा, जो इन्साफ़ और लोकशाही के बल चलनेवाली समाजी ज़िन्दगी को जन्म देने में मददगार साबित हो।

"मेरे ख़याल में इस मक़सद तक पहुँचने का पहला क़दम होना चाहिये, सत्ता या हुकूमत का विकेन्द्रीकरण (कई मरकज़ों में बँटवारा)। लोग ख़ुद अपनी ज़िम्मेदारियों का बोझ उठावेंगे, तभी उसमें से मानवी (इनसानी) गौरव और आत्म-निर्भरता यानी अपना इन्तज़ाम ख़ुद कर लेने की क़ाबलीयत पैदा होगी। हमारे देश में सच्ची लोकशाही तभी क़ायम हो सकेगी, जब हम अपनी हिफ़ाज़त, अपने इन्साफ़, अपने भोजन और अपने कपड़ों के लिए केन्द्रीय सत्ता (मरकज़ी हुकूमत) की ओर ताकने की ग़ुलामी वृत्ति को जड़मूल से उखाड़ फेकेंगे। ग़लतियाँ करके और दुःख झेलकर ही हम इनसान से ताल्लुक रखनेवाले नैतिक सिद्धान्तों यानी इख़लाक़ी उसूलों की अहमियत को समझ सकते हैं।

"सत्ता (हुकूमत) और अधिकार का केन्द्रीकरण हमें सर्वसत्तावाद और गुलामी की ओर ले जाता है। इस तरह की मरकज़ी सत्ता के साथ हुकूमत की बागडोर हाथ में लेने वाली कांग्रेसकी सच्ची कसौटी यही होगी कि वह हुकूमत को अलग-अलग केन्द्रों में बाँटने के ऐसे रास्ते और ज़रिये निकाले, जिनसे आमलोग अपना-अपना काम खुद चला सकें और ऐसा करते हुए ज्यादा रहमदिल और हमदर्द, ज्यादा सर्जक (तामीरी) और ज्यादा सुखी बन सकें।"

औंध राजके शासन-प्रबन्ध में बहुत बड़ा हाथ होने से अप्पासाहब ने अपने तज़रबे से यह लिखा है।

दक्खिनी अफ्रीका क्या करेगा ?

आरज़ी सरकार ने श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडितकी अगुआई में जो डेपुटेशन संयुक्त राष्ट्र-संघ की कान्फरेन्स में भेजा था, उसने बेशक बड़ी क़ाबलियत और कामयाबी के साथ बहुत पुरअसर काम किया है। श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित ने न्यूयार्क से नीचे दिया हुआ जो केबलग्राम (तार) भेजा है, उससे यह बात साफ़ ज़ाहिर होता है।

"आज आपकी दुआ से दक्खिनी अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों का न्याय का दावा वाजिब साबित हुआ है। कमेटी के मेम्बरों में से २४ ने हमारे हक़ में और १९ ने खिलाफ़ वोट दिये। मीटिंग खत्म होने पर (मैं) जनरल स्मट्स के पास गई और उनसे हाथ मिलाया। जिस ढंग से मैंने इस मामले की वकालत की थी, उसकी उन्होंने तारीफ़ की।"

अब यह देखना बाक़ी है कि दक्खिनी अफ्रीका के यूनियन की पार्लमेंट और वहाँ की यूरोपियन जनता किस तरह इसका जवाब देती है। फील्ड-मार्शल स्मट्स ने हिन्दुस्तानी डेपुटेशन को यह ताना मारा था कि

दक्खिनी अफ्रीका अपने यहाँ के एशियाइयों और हब्शियों के साथ जैसा बरताव करता है, उससे कहीं बदतर बरताव हिन्दुस्तान अपने उन नाम-धारी "अछूतों" के साथ करता है, जिन्हें क़ानूनी ज़बान में "शिड्यूल्ड कास्ट्स" या 'पिछड़ी हुई जातियाँ' कहा जाता है। अगर फील्ड-मार्शल का ताना सच है, तो कहना चाहिये कि उनकी इस बात में बहुत सचाई है। मगर दक्खिनी अफ्रीका के बारे में तो यह सच साबित हो चुका है कि वहाँ के एशियाइयों के साथ यूनियन सरकार का बरताव क़ानूनकी नज़र से दिन-दिन इतना बुरा होता गया है, कि आज वह बरदाश्त के बाहर हो गया है। दक्खिनी अफ्रीका की यूनियन सरकार ने हिन्दुस्तान की सरकार को दिया हुआ अपना क़रीब-क़रीब हरएक वचन तोड़ा है। दूसरी तरफ़, हिन्दुस्तान में 'शिड्यूल्ड कास्ट्स' पर किसी क़िस्म का मनहूस बन्धन लगानेवाला कोई क़ानून कभी नहीं रहा। इस बात को पूरी तरह साबित किया जा सकता है कि क़ानून ने 'शिड्यूल्ड कास्ट्स' की हिफ़ाज़त का हमेशा ख़याल रखा है। जहाँ तक मैं जानता हूँ, हिन्दुस्तान में ऐसी कोई क़ानूनी रुकावट नहीं है, जिसकी वजह से किसी पिछड़ी जाति का कोई शख्स एक ऊँचे-से-ऊँचे हिन्दुस्तानी की बराबरी न कर सकता हो। हाँ, यह सच है, और वह कट्टर हिन्दूधर्म और सनातनी हिन्दुओं के लिए शर्म की बात है, कि मज़हबी रीति-रिवाज़ इन अछूतों को वे हक़ भोगने नहीं देते, जो क़ानून ने उन्हें दे रखे हैं। और बदक़िस्मती से यह भी सच है कि कभी-कभी ये रीति-रिवाज क़ानून पर हावी हो जाते हैं। मगर लोक-मत दिन-दिन इस जंगली रिवाज के ख़िलाफ़ होता जा रहा है, और इसके नाबूद होने में अब सिर्फ़ वक्त का सवाल रह गया है। इसलिए हम उम्मीद करें कि हिन्दुस्तान की उन बातों से; जिनकी यहाँ कोई पैरवी नहीं करता, ओर जिनके ख़िलाफ़ जनता की आवाज़ दिन-दिन ऊँची होती जा रही है, बेजा फ़ायदा उठाने की बजाय दक्खिनी अफ्रीका के यूनियन के गोरे यूरोपियन यह महसूस करेंगे

कि अगर संयुक्त राष्ट्र-संघ की परिषद् दुनिया के लोक-मत की कोई निशानी है, तो वह यक़ीनन् यूरोपियनों के उस पक्षपात और तरफ़दारी के ख़िलाफ़ है, जो अब ज्यादा कड़ी होकर क़ानून की शकल में आ गई हैं।

मालवीयजी महाराज

अंग्रेजी में एक कहावत है—"राजा गया, राजा हमेशा जियो !" ठीक यही भारत-भूषण मालवीयजी महाराज के लिये कहा जा सकता है—"मालवीयजी गये मालवीयजी अमर हों !" मालवीयजी हिन्दुस्तान के लिए पैदा हुये और हिन्दुस्तान के लिये किये गये अपने कामों में जीते हैं। उनके काम बहुत हैं। बहुत बड़े हैं। उनमें सबसे बड़ा हिन्दू विश्व-विद्यालय है। ग़लती से उसे हम बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी के नाम से पहचानते हैं। उस नाम के लिये दोष मालवीयजी महाराज का नहीं, उनके पैरोकारों का रहा है। मालवीयजी महाराज दासानुदास थे। दास लोग जैसा करते थे, वैसा वे करने देते थे। मुझे पता है कि यह अनुकूलता उनके स्वभाव में भरी थी। यहाँ तक कि बाज़ दफ़ा वह दोषका रूप ले लेती थी। लेकिन 'समरथ को नहिं दोष गुसाँई' वाली बात मालवीयजी महाराज के बारे में भी कही जा सकती है। उनका प्रिय नाम तो हिन्दू-विश्व-विद्यालय ही था। और यह सुधार तो अब भी करने लायक है। इस विश्व-विद्यालय का हर एक पत्थर शुद्ध हिन्दू धर्म का प्रतिबिम्ब होना चाहिये। एक भी मकान पश्चिम के जड़वाद की निशानी न हो, बल्कि अध्यात्म की निशानी हो। और, जैसे मकान हों, वैसे ही शिक्षक और विद्यार्थी भी हों। आज हैं ? प्रत्येक विद्यार्थी शुद्ध धर्म की जीवित प्रतिमा है ? नहीं है, तो क्यों नहीं है ? इस विश्व-विद्यालय की परीक्षा

विद्यार्थियों की संख्या से नहीं, बल्कि उनके हिन्दू धर्म की प्रतिमा होने से ही हो सकती है, फिर भले वे थोड़े ही क्यों न हों।

मैं जानता हूँ कि यह काम कठिन है। लेकिन, यही इस विद्यालय की जड़ है। अगर यह ऐसा नहीं है, तो कुछ नहीं है। इस लिए स्वर्गीय मालवीयजी के पुत्रों का और उनके अनुयायियों का धर्म स्पष्ट है। जगत में हिन्दू धर्म का क्या स्थान है? उसमें आज क्या दोष हैं? वे कैसे दूर किये जा सकते हैं? मालवीयजी महाराज के भक्तों का कर्त्तव्य है कि वे इन प्रश्नों को हल करें। मालवीयजी अपनी स्मृति छोड़ गये हैं। उसको स्थायरूप देना और उसका विकास करना उनका श्रेष्ठ स्मृति-स्तम्भ होगा।

विश्व-विद्यालय के लिए स्व० मालवीयजी ने काफ़ी द्रव्य इकट्ठा किया था, लेकिन बाक़ी भी काफ़ी रहा है। इस काम में तो हर एक आदमी हाथ बँटा सकता है।

यह तो हुई उनकी बाह्य प्रवृत्ति। उनका अन्दरूनी जीवन विशुद्ध था। वे दया के भण्डार थे। उनका शास्त्रीय ज्ञान बड़ा था। भागवत उनकी प्रिय पुस्तक थी। वे बाहोश कथाकार थे। उनकी स्मरण-शक्ति तेजस्विनी थी। जीवन शुद्ध था, सादा था।

उनकी राजनीति को और दूसरी अनेक प्रवृत्तियों को छोड़ देता हूँ। जिन्होंने अपना सारा जीवन सेवा को अर्पित किया था, और जो अनेक विभूतियाँ रखते थे, उनकी प्रवृत्ति की मर्यादा हो नहीं सकती। मैंने तो उनमें से चिरस्थायी चीजें ही देने का संकल्प किया था। जो लोग विश्व-विद्यालय को शुद्ध बनाने में मदद देना चाहते हैं, वे मालवीयजी महाराज के अन्तर-जीवन का मनन और अनुसरण करने की कोशिश करें।

पैदल यात्रा किस लिए ?

[पिछली ६ठी जनवरी को गांधीजी का मौन-दिन था। उस दिन प्रार्थना-सभा के लिए उन्होंने हिन्दुस्तानी में अपना जो भाषण लिख रक्खा था, वह पढ़ा गया। श्री निर्मलकुमार बसु ने बँगला में उसका तरजुमा किया था। नीचे उसी का हिन्दुस्तानी दिया जाता है।

—सम्पादक]

मेरा आठवें दिन का मौन क़रीब ७ बजे ख़तम होगा, इसलिए मैं जो कहना चाहता हूँ, सो लिख डालता हूँ। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि कल जो यात्रा मैंने शुरू की है, वह अख़ीर तक चले और सफल हो। आप सब भी मेरी इस प्रार्थना में शरीक होइये। लेकिन प्रार्थना करने से पहले आपको यह जान लेना चाहिये कि मैं किस लिए इस यात्रा पर निकला हूँ। मेरी इस यात्रा का एक ही मक़सद है और वह बिलकुल साफ़ है—ईश्वर हिन्दुओं और मुसलमानों के दिलों को साफ़ व पाक बनाये, और दोनों फ़िरक़ों के लोग एक दूसरे का अविश्वास और डर छोड़ें। इस प्रार्थना में आप सब भी शरीक होइये और कहिये कि खुदा हमारा मालिक है; वह हमें कामयाबी बख्शे।

हर कोई यह पूछ सकता है कि इस मक़सद को पूरा करने के लिए यात्रा की ज़रूरत ही क्या है ? जिसका अपना दिल साफ़ नहीं है, वह दूसरों को साफ़ बनने के लिए कैसे कहेगा ? जो खुद डरपोक है, या जिसके दिल में हिम्मत कम है, वह दूसरों को किस तरह हिम्मत दिलायेगा ? जो खुद हथियारों से लैस है, क्या वह दूसरों को हथियार छोड़ने की सलाह दे सकता है ? ये सवाल वाजिब हैं, और ऐसे सवाल मुझ से पूछे भी गये हैं। अपनी इस यात्रा में मैं अपनी कोशिश भर हर देहाती से यह कहना चाहता हूँ कि मेरे मन में कहीं भी मैल नहीं है; इसका सबूत मैं तभी दे सकता हूँ, जब मैं उन लोगों के बीच रहूँ या घूमूँ, जो मुझ पर एतबार

नहीं करते। तीसरा सवाल टेढ़ा है, क्योंकि मैं खुद हथियारों के आसरे में रहता हूँ ; मेरे साथ पुलिस और फ़ौज के हथियारों से लैस लोग रहते हैं, और वे अदब के साथ, चौकन्ने रह कर, हमेशा मेरी हिफ़ाजत करते हैं। लेकिन यह तो सरकार के हाथ की बात है। हमारी राष्ट्रीय सरकार का यह ख़याल है कि यात्रा के दिनों में मेरे साथ पुलिस और फ़ौजी रखना उसका फ़र्ज़ है। उसे मैं किस तरह रोक सकता हूँ ? मैं अपनी ज़बान से यह कह सकता हूँ कि ईश्वर को छोड़ दूसरा कोई मेरा रखवाला नहीं। मैं नहीं जानता कि मेरी इस बात को आप सच मानेंगे या नहीं ? एक भगवान ही इनसान के दिल को जानता है, दूसरा कोई जान नहीं सकता। .खुदापरस्त इनसान का फ़र्ज़ है कि वह अपने दिल की आवाज़ पर चले। मेरा दावा है कि मैं इस तरह चलता हूँ। लेकिन सिक्ख भाइयों को तो सरकार ने नहीं रक्खा है न ? उन्हें तो मैं अपने साथ घूमने से रोक सकता हूँ न ? आपको जानना चाहिये कि वे भी सरकार की इजाजत लेकर ही मेरे साथ घूम रहे हैं। वे यहाँ लड़ने के इरादे से नहीं आये हैं। वे अपने कृपाण भी छोड़ आये हैं। वे बिना पक्षपात के दोनों फ़िरकों की सेवा करने के लिए ही आये हैं। नेताजी ने जो आज़ाद हिन्द फ़ौज तैयार की थी, उसका पहला सबक़ यह था कि हिन्दू-मुसलमान ईसाई, पारसी वग़ैरा तमाम फ़िरकों के लोगों को चाहिये कि वे हिन्दुस्तान को अपना मुल्क मानें, और सब मिल कर अपने कामों से इस तरह की एकता पैदा करें। सिक्ख दोनों फ़िरकों की सेवा करना चाहते हैं, और उनकी ख़्वाहिश है कि वे मेरे मातहत रह कर काम करें। ऐसे मित्रों को मैं इनकार कैसे करूँ, और किस लिए करूँ ? वे दुनिया को दिखाने के लिए नहीं, बल्कि सेवा का व्रत लेकर मदद कर रहे हैं। अगर उनकी सेवा लेने से इनकार कर दूँ, तो मैं अपनी ही आँखों से गिर जाऊँ, और बुज़दिल साबित होऊँ। मेरी गुज़ारिश है कि आप भी मेरे भाइयों पर एतबार करें, और इन्हें अपना भाई समझ कर इनकी

मदद लें। ये बहुत मदद कर सकते हैं, इन्हें तजरबा भी बहुत है, ख़ुदा ने इन को तन्दुरुस्ती दी है, ईमान दिया है।

इनके बारे में मैंने जो कुछ कहा है, वह सच न हुआ, तो ये से चले जायँगे, और अगर मैं किसी बुरी नीयत से इन्हें यहाँ ल होऊँगा, तो मैं मिट जाऊँगा; और जिस प्रयोग के लिए मैं यहाँ आ बैठा हूँ, वह भी नाकाम होगा।

अपनी इस यात्रा के दरमियान मैं आप लोगों को कुछ ज़रूरी अच्छी तरह सिखा देना चाहता हूँ। जैसे, गाँव का पानी किस साफ़ रक्खा जाय, किस तरह ख़ुद साफ़-सुथरा रहा जाय, जिस मि हम पैदा हुए हैं, उस मिट्टी का सही-सही इस्तेमाल कैसे किया जाय, सर पर जो अनन्त आसमान फैला हुआ है, उससे ज़िन्दगी की त किस तरह हासिल की जाय, अपने आस-पास की हवा से प्राण किस तरह ली जाय, और किस तरीक़े से सूरज की धूप का ठी इस्तेमाल किया जाय। हमारा देश कंगाल बन गया है। मैं आप तालीम देने की कोशिश करूँगा, जिससे आप ऊपर कही गई इन जुदा ताक़तों का सही इस्तेमाल करके इस देश को सोने का देश सकें। मैं ईश्वर से मनाता हूँ कि इस यात्रा में मैं आप लोगों की सेवा करने में सफल होऊँ।

श्रीरामपुर डायरी

२५-१२-'४६

ईशुख्रिस्त का जन्म-दिन होने से गांधीजी की आज की प्रार्थना में बाइबिल के कई फ़िक़रे पढ़े गये। आज की सभा की यह एक खींचनेवाली बात थी। सभा में तक़रीर करते हुए गांधीजी ने

"अब मैं ऐसी सर्व धर्म सहिष्णुता को मानने लगा हूँ, इसे मैं सर्व-धर्म-समभाव कहता हूँ। मुमकिन है, लोग यह सोचें कि ईशुखिस्त सिर्फ़ खिस्ती धर्म माननेवालों के ही हैं। मगर दरअसल वे किसी एक कौम के नहीं, क्योंकि ईशु के उपदेश सारी दुनिया की सभी क़ौमों की मिल्कियत है।

२६–१२–'४६

प्रार्थना में आये हुए लोगों की तरफ़ मुख़ातिब होकर प्रार्थना के बाद की अपनी तक़रीर में गांधीजी ने कहा—"मुझे इसमें ज़रा भी शक नहीं कि अंग्रेज़ों को हिन्दुस्तान छोड़ कर जाना ही पड़ेगा। लेकिन अगर हिन्दुस्तान के लोग आपस में लड़ने-झगड़ने की बेवक़ूफ़ी में फँसे रहे, तो सारे देश का भविष्य कैसा होगा, इसकी कल्पना करने में मुझे ज़रा भी मुश्किल नहीं मालूम होती। बहुत मुमकिन है कि हिन्दुस्तान संयुक्त राष्ट्र के अधिकार में सौंप दिया जाय। इसका मतलब यह होगा कि हमारे सर पर एक नहीं, बल्कि अनेक मालिक होंगे, और चुनांचे हमें आज़ादी की बात भूल जानी पड़ेगी।"

आगे चल कर गांधीजी ने कहा—"बंगाल में जो काम मैंने अपने ज़िम्मे लिया है, वह बहुत गम्भीर है। यहाँ जो ज़ात पहले मुझे अपना दोस्त मानती थी, वही अब मुझे अपना दुश्मन समझने लगी है। मुझे साबित करना है कि 'मैं मुसलमानों का सच्चा दोस्त हूँ।' चुनांचे अपने इस सब से बड़े प्रयोग के लिए मैंने मुसलमानों की बहुत ज़्यादा आबादीवाली जगह पसन्द की है।

'सुलह और शान्तिका अपना मिशन पूरा करने के लिए मेरा अकेले ही गाँवों में घूमना काफ़ी है; क्योंकि मेरी सलाह और रहनुमाई चाहने वाले बाहर से आये हुए दूसरे कार्यकर्त्ता, मुझे मेरे अपनाये हुए अटपटे सवाल को हल करने में मदद देने के बदले मेरे लिए दूसरे नये-नये पेचीदा सवाल खड़े कर देते हैं। अगर नोआखाली के लोगों की

सेवा करने की ज़बरदस्त इच्छा रखनेवाले लोग न सिर्फ़ अपने काम
योजना लेकर बंगाल-सरकार के वज़ीरों से मिलें, और काम शुरू करने
लिए भी उनकी तहरीरी इजाज़त हासिल करें, बल्कि अपनी योजना
लिए भी उनकी मंजूरी ले लिया करें, तो आज जो ग़लत-फ़हमी पैदा
गई है, वह बहुत हद तक दूर हो जाय।

"बम्बई से कुछ डॉक्टर कल मेरे पास आये थे। वे लोग अप
घर-बार छोड़कर भागे हुए निराश्रितों और दंगा-फ़साद की चपेट में आ
हुए हलक़ों को डॉक्टरी मदद पहुँचाना चाहते थे। मैंने उन्हें यही सल
दी। कुछ लोग सेवा करने के लिए नोआखाली आ पहुँचने की दरख़ा
के तार व ख़त मेरे पास भेजते रहते हैं। उन्हें मैंने यह जवाब भेजवा
है कि आप लोग अपनी जगह के आस-पास के हिस्सों में ही रचनात्म
काम करें। आपका ऐसा करना शान्ति क़ायम करने में मदद देना
गिना जायगा। जो लोग मुझसे कहते हैं कि मैं उन्हें नोआखाली
अच्छी-से-अच्छी सेवा करने का रास्ता दिखाऊँ, और उनकी रहनुमा
करूँ, उनसे मैं कहता हूँ कि 'अभी तो मैं ख़ुद ही अँधेरे में भटक र
हूँ। ऐसी हालत में मैं आपकी क्या रहनुमाई करूँ? अन्धा आदमी स
रास्ता कैसे बता सकेगा?'

'यह सब मुझे क्यों कहना पड़ा, इसकी वजह भी जान लीजिये
नोआखाली आकर सेवा करने की दरख़ास्त करने वाले कुछ लोगों से मैं
पूछा कि मेरे यहाँ से चले जाने के बाद अगर जरूरी हुआ, तो क
आप ज़िन्दगी भर यहाँ रहकर सेवा करने के लिये तैयार हैं? उन्हों
जवाब दिया—'इस तरह बँध तो कैसे सकते हैं'? मेरे जाने के बाद यह
रहकर सेवा करने की इन लोगों की नामरज़ी या आनाकानी पर से मैं
यह मानने लगा हूँ कि ये लोग यहाँ आकर मेरा ध्यान खींचने के लि
ही सेवा करने की आतुरता दिखलाते हैं। ऐसे लोगों को सेवा में ही जीव
की सफलता नज़र नहीं आती है।

२७-१२-'४६

अपनी तक़रीर में गाँधी जी ने कहा—"एक दोस्त मुझसे कहा करते हैं कि मेरा बार-बार यह कहना कि 'मुझे अपने आस-पास अँधेरा नज़र आता है', बहुत से लोगों के दिल में उलझन पैदा करता है। उन दोस्त का ख़याल है कि दूर रहने वाले लोगों को शान्ति-कार्य की मेरी योजना में प्रकाश की किरण चमकती हुई नज़र आती है, और इस बात का पूरा सबूत भी देखने को मिलता है कि तूफ़ान की आँच से जले हुये हलकों में आपसी विश्वास की हवा फिर पैदा हो रही है।

"मैं इन दोस्त से और उनके-जैसे ख़याल रखने वाले दूसरे लोगों से कहूँगा कि आप लोगों को मेरे बयान के बारे में थोड़ी ग़लत-फ़हमी हुई है। आज मैं अपने को जिस अँधेरे से घिरा हुआ पाता हूँ, वैसा अँधेरा मैंने पहले कभी महसूस नहीं किया था। सचमुच आज मेरी अहिंसा की बहुत कड़ी कसौटी हो रही है। जब तक मेरा मक़सद पूरा नहीं होता, तब तक यह कैसे कहा जा सकता है कि मैं कामयाब हो गया हूँ?

"यह सच है कि पौ फटने से पहले रात का अँधेरा बहुत ही घना हो जाता है। मैं ख़ुद आज ऐसा ही घना अँधेरा महसूस कर रहा हूँ। और अगरचे दूर बैठे हुए दोस्तों को सुबह की लाली नज़र आती होगी, मगर ख़ुद मुझे तो अभी तक ऐसा लगता है कि मेरे आस-पास घने अँधेरे के सिवा और कुछ नहीं है।

"बहुत बरस पहले मेरे एक दोस्त पतंजलि का योग सूत्र हमेशा अपनी जेब में लिये घूमा करते थे। मुझे ख़ुद तो संस्कृत आती नहीं, फिर भी वे भाई मुझसे कई सूत्रों का मतलब पूछने आते थे। उनमें से एक सूत्र में कहा गया है कि जिसके दिल में अहिंसा पूरी तरह बस जाती है, उसके सामने वैर और बदमाशी की सारी वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं। मैं देखता हूँ कि मेरे आस-पास की हालत अभी ऐसी हुई नहीं

है। इससे मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मेरी अहिंसा अभी इस वक्त की कसौटी पर सौटंच पूरी नहीं उतरी है।

"मैं जो कहता हूँ कि मेरे आस-पास अभी अँधेरा छाया हुआ है, उसका यह खुलासा है।

"अपनी यात्रा में मैं कम-से-कम साथी लेकर निकलना चाहता हूँ। सफर के दिनों में मुसलमान दोस्तों के घरों में ठहरना मुझे अच्छा लगेगा। मैंने अपनी ज़रूरतें बहुत ही कम कर दी हैं। गाँव का ग़रीब-से-ग़रीब आदमी भी उन्हें पूरा कर सकता है। मुझे साबित करना है कि मुसलमानों के लिए मेरे दिल में मुहब्बत और दोस्ती के सिवा दूसरा कोई जज़्बा नहीं है। चुनांचे अपने साथ किसी क़िस्म की हिफ़ाज़त का इन्तज़ाम रखना मुझे अच्छा न लगेगा।"

प्रार्थना-सभा

१८–१२–'४६

प्रार्थना-सभा में इकट्ठा हुए भाई-बहनों के सामने तक़रीर करते हुए गांधीजी ने कहा—"कांग्रेस हिन्दुओं की जमात नहीं है। दूसरे फ़िरकों के हितों को भूलाकर वह हिन्दुओं के ही हितों की सेवा नहीं करती।

"सभा में आये हुए इन नेताओं की पहचान मैं आप सबको करा ही चुका हूँ। किसी एक खास क़ौम की निगाह से नहीं, बल्कि खालिस ग़ैरक़ौमी निगाह से कई मुद्दतों पर मेरे साथ सलाह-मशविरा करने के लिए ये लोग यहाँ आये हैं।"

चण्डीपुर में प्रार्थना के लिए आये हुए लोगों की सभा में तक़रीर करते हुए गांधीजी ने कहा—"मेरा मिशन यहाँ रहनेवाली दो सगी बहनों-जैसी ज़ातों के बीच दोस्ती क़ायम करना है, किसी एक क़ौम को बाक़ी के दूसरे लोगों के खिलाफ़ संगठित करना नहीं। अभी तक हिन्दुस्तान में जिस अहिंसा पर हमने अमल किया था, वह कमज़ोरों की अहिंसा थी, लेकिन अब जिस प्रयोग में मैं यहाँ लगा हूँ, वह बलवानों की

अहिंसा का है। अगर यह प्रयोग सफल हुआ, तो दोनों क़ौमों को फ़ायदा पहुँचाने वाली हवा यहाँ पैदा होगी। जब हिन्दू और मुसलमान अपने-अपने दिलों से एक दूसरे का डर और शक निकाल फेकेंगे, तभी सच्ची और दिली एकता क़ायम हो सकेगी। और जब दोनों के दिल एक हो जायँगे, तो उनमें दुश्मनी होने की कोई वजह नहीं रह जायगी।"

गाँवों को संगठित करके उन्हें स्वावलम्बी बनाने के काम का जिक्र करते हुए गांधीजी ने कहा—"पूर्वी बंगाल की ज़मीन सचमुच सोने की ज़मीन है। मगर बदक़िस्मती से इस ज़मीन पर बसने वाले लोगों का जीवन जैसा होना चाहिये, वैसा है नहीं। यहाँ के तालाबों का पानी इतना गन्दा होता है कि उसमें हाथ धोने की भी मेरी हिम्मत नहीं पड़ती। और गाँव भी कितने गन्दे हैं! यहाँ के धनवान लोग ज्यादा धनवान होते जाते हैं, और ग़रीब ज़्यादा ग़रीब बनते जाते हैं। यह हालत क़ुदरत ने आप लोगों पर नहीं लादी। इसे तो शैतानी हालत ही कह सकते हैं। लेकिन समाजी-व्यवस्था के शैतानी होते हुए भी समाज में रहने वाले लोग खुद कभी शैतान नहीं होते। इस लिए लोगों को चाहिये कि वे अपने समाज को ऊपर उठाने की कोशिश करें और भाईचारे व दोस्ती के नये आदर्शों के मुताबिक़ उसकी रचना करें।"

आगे चलकर गांधीजी ने कहा—"अपने देश की व समूचे मानव-समाज की सेवा के लिये निजी तौर पर मुझे १२५ बरस जीना अच्छा लगेगा, लेकिन दवाइयाँ खाकर मैं इतनी लम्बी उमर तक जीना नहीं चाहता।"

फिर अपना भाषण समेटते हुए गांधीजी ने कहा—"अपने गाँवों की ज़िन्दगी को फिर से अच्छी तरह संगठित करने और अपनी माली हालत सुधारने के लिए आप सब हिन्दू और मुसलमान भाई मिलकर काम करें। घरेलू दस्तकारियों के ज़रिये आप को हिल-मिल कर एक-सा काम करने का मौक़ा मिलेगा, और इससे आप में आपसी एकेके ख़याल

बढ़ते जायँगे। इसके अलावा, आप सब से मेरा आग्रह है कि आप लोग १८ तरह का रचनात्मक काम करने में जुट जायँ; क्योंकि इस काम को अमली शकल देने से आप के सभी गाँवों में नई जान आ जायगी।"

बहनों को सलाह

चण्डीपुर के जिस घर में गांधी जी ठहरे हुए थे, उसके आँगन में इकट्ठी हुई बहनों की तरफ़ मुख़ातिब होकर उन्होंने कहा—"औरतों को भगवान् के और अपनी रूहानी ताक़त के सिवा और किसी का भरोसा नहीं रखना चाहिये। आप सब को अपनी निजी ताक़त के भरोसे रह कर अपने में ज्यादा आत्म-विश्वास और हिम्मत पैदा करनी चाहिये। अगर आप डरपोक बनी रहेंगी, तो आसानी से गुण्डों के हमलों की शिकार बन जायँगी।

"हिन्दुस्तान की औरतें कभी अबला नहीं थीं। वे भूतकाल में अपनी बहादुरी के लिए मशहूर रही हैं, और बहादुरी के ये काम उन्होंने तलवार से नहीं, बल्कि अपने चारित्र्य की ताक़त से किये थे। आज भी आप सब बहनें अपने देश की कई तरह से मदद कर सकती हैं। उपयोगी काम करके आप न सिर्फ़ अपनी जाति की मदद कर सकेंगी, बल्कि पूरे देश को भी मदद पहुँचाने के क़ाबिल बन जायँगी, और उसे अपने मक़सद के ज्यादा नज़दीक ले जायँगी।

"यहाँ जो वारदातें हुई हैं, उनके लिये अकेले नोआखाली के मर्द ही ज़िम्मेदार नहीं हैं बल्कि औरतें भी उतनी ही ज़िम्मेदार हैं। आप सब निडर बनिये और पुराने ज़माने की द्रौपदी और सीता-जैसी मशहूर औरतों की तरह भगवान् पर श्रद्धा रखिये।

"इसके सिवा, आप लोग हिन्दूधर्म से छुआछूत के काले दाग़ को धो डालिये। अब भी अगर आप अछूतों को अपनाने में आनाकानी

करेंगी, तो आप को इससे भी ज़्यादा मुसीबतें उठानी पड़ेंगी। आप सब हर रोज़ अपने साथ खाना खाने के लिये एक हरिजन को न्योतना शुरू कीजिये। अगर आप से यह न बन सके, तो खाना खाने से पहले किसी हरिजन को बुलाकर उससे कहिये कि वह आप के पीने के पानी को या आप की रसोई को छू दे। इस तरीक़े से आम लोगों के जुदाजुदा तबक़ों के बीच जात-पाँत के ग़ैर क़ुदरती भेदों के कारण पड़े हुए अन्तर को मिटाने में आप काफ़ी आगे बढ़ सकेंगी। अगर आप इस तरह से भूत काल के पापों का प्रायश्चित्त नहीं करेंगी, तो हम सब पर दूसरी बहुत-सी और इनसे भी ज़्यादा भयंकर मुसीबतें आ पड़ेंगी।

चण्डीपुर से एक मील दूर चण्डीगाँव नाम के गाँव में गांधी जी ने शनीचर के दिन सुबह एक स्कूल खोला। इस सिलसिले में उन्होंने पूछ-ताछकर यह जान लिया कि स्कूल में कौन-कौन से विषय पढ़ाये जाते हैं, और ख़ासकर वहाँ किसी हुनर या उद्योग की तालीम दी जाती है या नहीं।

स्कूल खोलने के जलसे में आये हुए लोगों को समझाते हुए गांधीजी ने कहा—"मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि हमारे मदरसों का काम पुराने ढर्रे पर चलता रहे। इस लिये मैं कहता हूँ कि आप लोग स्कूल में दस्तकारी की तालीम दाख़िल कीजिये। अगर आप मेरी सलाह से स्कूल चलावें, तो मैं आप से कहूँगा कि आप नई तालीम के ढंग पर अपना स्कूल चलाइये। क्योंकि नई तालीम में सब तरह की शिक्षा दस्तकारी की मारफ़त दी जाती है। तालीम का मक़सद विद्यार्थियों को स्वावलम्बी बनाना है।" शाम की प्रार्थना-सभा में तक़रीर करते हुए गांधीजी ने कहा—"मैं यहाँ राजनीति की बातें करने नहीं आया; मुस्लिम-लीग का असर घटाना या कांग्रेस का असर बढ़ाना भी मेरा मक़सद नहीं; मुझे तो लोगों से उनकी रोज़मर्रा की जिन्दगी की उन छोटी-छोटी बातों के बारे में बातचीत करनी है, जिन पर ठीक-ठीक ध्यान दिया

जाय, तो इस धरती की शकल ही बदल जाय, और जिस दर्दनाक हालत में आज आप सब जी रहे हैं, वह न रह जाय, और उसमें से स्वर्ग की नई हालत पैदा हो जाय। बंगाल हरियाली से भरा पूरा, पानी की बेहद सहूलियतों वाला और उपजाऊ ज़मीन वाला मुल्क है। क़ुदरत ने बंगाल पर अपनी बेशुमार दौलत बरसाई है, मगर नासमझी की वजह से यहाँ के लोग ग़रीबी और बीमारी की तकलीफ़ें उठाते हैं। ऐसा मालूम होता है कि सुपारी और नारियल के बगीचों से और थोड़ी खेती से जो नाममात्र की कमाई होती है, उससे उन्हें सन्तोष हो जाता है। अगर बंगाल के लोग चाहें तो वे खेती के बारे में ज़्यादा जानकारी हासिल करके अपनी ज़मीन में से कई गुनी ज्यादा दौलत पैदा कर सकते हैं, और अपने गाँवों को इतना पाक और साफ़ बना सकते हैं कि वहाँ शान्ति और समृद्धि हमेशा बनी रहें। और, अगर देहात के सभी लोग मिल कर मेहनत करें, तो आप की ज़मीन की सूरत पलक मारते बदल जाय।"

अपने घर-बार छोड़कर भागे हुए निराश्रितों का ज़िक्र करते हुए गांधीजी ने कहा कि उन्हें अपने-अपने गांवों में वापस जाकर सब तरह के डर और मुश्किलों का छाती खोलकर सामना करना चाहिये। और, जिसने कोई पाप या गुनाह किया हो, उसे भी खुले दिल से भगवान् के सामने अपना गुनाह कबूल कर लेना चाहिये और फिर भगवान् पर पूरा-पूरा भरोसा रखकर उसे जो करना हो, वह करने देना चाहिये। जो सच्चे मज़हबी खयाल के लोग भगवान् के आगे अपना पाप या गुनाह क़बूल करते हैं, वे फिर वैसी ग़लती में नहीं फँसते।

गांधीजी ने कहा—"बार-बार मेरे दिल में यह ठँसाने की कोशिश की जाती है कि अब मेरी जगह इस सूबे में नहीं, बल्कि बिहार में है, जहाँ यहाँ से कई गुनी ज्यादा बुरी वारदातें हुई कही जाती हैं। यहाँ इकट्ठा हुए लोगों को यह जान लेना चाहिये कि अपने बंगाल आने के बाद से फ़ौरन ही मैं बिहार की लोकप्रिय सरकार के साथ ख़तो-किताबत

करता रहा हूँ, और यहाँ बैठे-बैठे भी उस सरकार पर जितना मुमकिन है, उतना असर डालता रहा हूँ। लेकिन मैं नोआखाली छोड़ कर जाना नहीं चाहता; क्योंकि यहाँ का मेरा काम बिलकुल दूसरी क़िस्म का है। मुसलमानों के बीच में रह कर मुझे यह साबित करना है कि मैं हिन्दुओं का या दूसरी किसी कौम का जितना दोस्त हूँ, उतना ही मुसलमानों का भी हूँ। ज़ाहिर है कि यह काम ऐसा नहीं, जो दूर रह कर या मुँह से बोल कर किया जा सके।

"कल बिहार सरकार के एक वज़ीर और दूसरे कुछ ज़िम्मेदार अफ़सर मुझसे मिलने आये थे। उन्होंने दिल में किसी तरह का कोई दुराव न रखते हुए अपनी जानकारी की सभी बातें मुझे सुनाई थीं। उन्होंने क़बूल किया कि एक अभागे हफ्ते के अन्दर ऐसी कई बातें हो गईं, जो सिर्फ़ हैवानों को ही शोभा दे सकती हैं। उन बातों के लिए इन्साफ़ की रू से उन्हें जितना उलाहना दिया जाय, सो सब सुनने के लिए वे तैयार हैं।

"एक ज़िम्मेदार सरकार की हैसियत से उनको अपने फ़र्ज़ का खयाल है। जो वारदातें हो चुकी हैं, उनमें उनका हाथ था, या इनसान के किये जितना हो सकता है, उतना उन्होंने नहीं किया, वग़ैरा इलजामों से उन्होंने इनकार किया, और कहा कि अपने को बे-क़सूर साबित करने के लिए हम चाहे जैसी कसौटी पर चढ़ने के लिये तैयार हैं। मुस्लिम-लीग ने उन पर जो इलज़ाम लगाये हैं, उनका जवाब देने की कोशिश वे करते रहते हैं। मैं आप लोगों को यक़ीन दिलाना चाहता हूँ कि जब तक निजी तौर पर मुझे बिहार के मामले में पूरा सन्तोष नहीं हो जायगा, और इनसान जितना कर सकता है, वह सब मैं कर न गुज़रूँगा, तब तक मैं चैन की साँस न लूँगा।

"इधर-इधर प्रार्थना-सभा में हिन्दुओं और मुसलमानों की हाज़िरी कम होती जा रही है, और शायद एक दिन ऐसा भी आये, जब मेरी

बात सुनने के लिए कोई भी हाज़िर न रहे। मगर ऐसा होने पर भी मैं नाउम्मीद होकर अपने मिशन का काम छोड़ नहीं सकता। उस हालत में अपना चरखा लेकर मैं एक गाँव से दूसरे गाँव घूमना शुरू करूँगा। मेरे लिए यह भगवान् की सेवा का काम है। जो काम मैंने निःस्वार्थ भाव से अपने सिर लिया है, वह अपने आप ही मेरे आस पास रहने वाले लोगों पर अपनी अच्छाई का असर डालेगा। जो सेवक लोगों को यह सिखाता हुआ गाँव-गाँव घूमेगा कि वे अपने तालाब किस तरह साफ़ रक्खें, और अपनी ज़िन्दगी को खुशहाल बनाने के लिए कौन-कौन से नये हुनर और उद्योग सीखें, लोग उससे अलग और दूर रह ही नहीं सकेंगे, बल्कि वे उसके साथ रहना ही ज़्यादा पसन्द करेंगे।"

आगे चल कर गांधी जीने कहा—"मुझे अभी-अभी खबर मिली है कि गाँव छोड़ कर भागे हुए बे-आसरा लोग अब अच्छी तादाद में वापस अपने-अपने गाँवों को जाने लगे हैं, और उन्हें फिर से बसाने और स्वावलम्बी बनाने का सवाल अब ज़्यादा मुश्किल बनता जा रहा है। निराश्रितों को मेरी सलाह है कि वे सब तरह की मुश्किलों का सामना करके भी जल्दी ही अपने-अपने घर वापस चले जायँ। उन्हें अपने टूटे-फूटे और खण्डहर से बने मकानों को अपनें हाथों फिर से खड़ा करने और अपनी ज़िन्दगीके बिखरे हुए तारों को फिर से जोड़ कर अपने पैरों खड़ा होने का पक्का इरादा कर लेना चाहिये। बेशक, सरकार को उन्हें सब तरह की ज़रूरी मदद देनी चाहिये, और इसके लिए उन्हें भी सरकार से कहना चाहिये। मैं जानता हूँ कि कई ख़ैराती जमातें इन लोगों को पैसे की और दूसरी चीज़ों की मदद देने के लिए तैयार हैं। लेकिन जो काम दर-असल लोगों की अपनी सरकार का है, उसे ये जमातें अपने सिर क्यों लें? अगर सरकार ज़रूरी हद तक या जितनी चाहिये उतनी फुरती से निराश्रितों की मदद न कर सके, तो उसे इसका एलान कर देना चाहिए, और लोगों को फिर से बसा कर उन्हें उनके पैरों पर खड़ा

करने के लिए खैराती जमातों से कहना चाहिये कि वे इस काम में सरकार की मदद करें।

"इस बन्दोबस्त की शकल जैसी भी हो, ताहम निराश्रितों को चाहिये कि वे सब तरह की जोखिमों और मुश्किलों का सामना करके भी अपने-अपने गाँवों में जाकर रहने के लिए तैयार हो जायँ।"

जब चण्डीपुर—चण्डी गाँव ग्राम सेवा-संघ के मेम्बर गांधी जी से मिले, तो उनके एक सवाल के जवाब में गांधीजी ने कहा—"विरोधी दल को मना लेने की बात के पीछे जो ज़हनियत काम करती है, वह मुझे अच्छी नहीं मालूम होती। अपनी इज़्ज़त या आबरू खोकर इस तरह किसी को मनाया नहीं जा सकता। विरोधी को मना लेने का सच्चा मतलब यह है कि हम अपने दिल से सब तरह का डर दूर कर दें, और जो बात हमें सच मालूम हो, उसे हम हर तरह का नुक़सान उठा कर भी करें।" गांधीजी से पूछा गया सवाल यों था—"बहुमत वाली जाति की अल्पमत वाली जाति पर हमला करने की वृत्तिको मिटाने और उसे मना लेने के लिए हमारे संघ को क्या करना चाहिये ?"

एक दूसरा सवाल गांधीजी से यह पूछा गया—"अगर सरकार द्वारा मञ्जूर की हुई पैसों की मदद काम चलाऊ मकान खड़े करने के लिए भी नाकाफ़ी हो, तो क्या निराश्रितों को उसे मञ्जूर कर लेना चाहिये ?"

गांधीजी ने जवाब दिया—"निराश्रित लोग ईमानदारी से हिसाब लगा कर यह तय करें कि बिलकुल ज़रूरी और कम-से-कम आसरे के लिए उन्हें कितनी मदद की ज़रूरत होगी। और अगर सरकार द्वारा मञ्जूर की हुई मदद के पैसों से उनकी ऐसी बुनियादी ज़रूरत भी पूरी न होती हो, तो उन्हें उसे नामञ्जूर कर देना चाहिये। और इस तरह अपने सर पर एक छप्पर का भी आसरा न हो, तो भी उन्हें अपने-अपने गाँवों में वापस जाना ही चाहिये। मगर यह काम उन्हें बिलकुल खुले दिल से और खादारी से करना चाहिये।"

सवाल—जब लोगों को फिर से बसाने का काम चल रहा है, तो अल्पमतवालों को उनकी हिफाजत के खयाल से एक ही जगह काफ़ी तादाद में बसाने का इन्तजाम क्यों न किया जाय ?

जवाब—अल्पमतवाली जाति के लोगों को इस तरह इकट्ठा करके एक छावनी में रखने की यह बात इस क़ाबिल भी नहीं कि इस पर कुछ सोचा जाय। इसके मुताबिक काम करने से सारे देश की आबादी दो मुख़ालिफ़ छावनियों में बँट जायगी, और मुमकिन है कि इससे एक किस्म की हथियारों के डर से पैदा हुई शान्ति लोगों को नसीब हो। मगर हर शख्स को—फिर वह किसी भी कौम का हो, और किसी भी मज़हब को मानने वाला हो, जवान हो या बूढ़ा हो—चाहिये कि वह भगवान् की तरफ़ से मिलनेवाली अपनी रूहानी ताकत पर भरोसा रखकर उसी में अपने को सलामत समझे। यही वह रास्ता है, जो इनसान को शोभा देनेवाला और उसकी हिम्मत को बढ़ाने वाला है। इसके बाद गांधीजी से एक सवाल यह पूछा गया—दंगा-फ़साद की चपेट में आई हुई जगहों में सच्चे क़सूरवार लोग आज भी आज़ाद होकर घूमते-फिरते हैं। इस हक़ीक़त को ध्यान में रखकर, वापस लौटे हुए निराश्रितों की हिफाजत का क्या इन्तजाम किया जाय? इसके जवाब में गांधीजी ने कहा—आज सारी दुनिया में ऐसी एक भी जगह नहीं मिलेगी, जहाँ क़सूरवार लोग खुले न घूमते हों। इसलिये गाँवों में रहनेवाले लोगों को अपनी हिफ़ाज़त और अपने बचाव के लिए अपनी ही ताकत का भरोसा रखना चाहिये। उनके दिल की ताकत ही उन्हें हमेशा के लिये सुरक्षित बना सकती है। जो लोग भगवान् को अपना रखवाला मानते हैं, उन्हें गुनाहगारों के खुले घूमने की क्या परवाह! लोगों को जो बात मुनासिब मालूम हो, जो उनका धर्म हो, उसके मुताबिक उन्हें चलना चाहिये, और बाक़ी सब कुछ भगवान् पर छोड़ देना चाहिये।

रोज़ी कमाने का ज़रिया क्या हो ?

सवाल—सरकार की तरफ़ से या खानगी संस्थाओं की तरफ़ से मिलनेवाली राहत के बन्द होने पर हम निराश्रितों की रोज़ी चलाने के लिए उन्हें कौनसा काम दें ?

जवाब—निजी तौर पर तो मैं यह सुझाना चाहूँगा कि सूत कातने का काम सब की कमाई का ज़रिया बनने लायक़ है। फिर भी, यहाँ मैं उसी को दाखिल करने की बात नहीं कहता। इसके बदले मेरा सुझाव यह है कि कार्यकर्त्ता लोग हर एक गाँव में जाकर वहाँ की हालत की पूरी-पूरी जाँच करें, और उसके आधार पर यह ढूँढ़ निकालें कि हर एक गाँव में निराश्रितों की रोज़ी के लिए कौनसा धन्धा लायक़ है। इस तरह की जानकारी हासिल होने पर इसके बारे में ज्यादा ब्योरेवार सलाह देना मुझे अच्छा लगेगा। बेशक, यह बात तो मैं आज भी कह सकता हूँ कि कोई भी काम या धन्धा आपसी सहयोग या मेल-जोल के साथ ही किया जाना चाहिये।

गांधीजीकी पैदल-यात्रा की डायरी

आज गांधी जी ने एक बड़ी सभा के सामने तक़रीर की। सुनने वाले पूरी तरह शान्त थे। गांधी जी जब सभा में आये तब ज़रा भी शोर नहीं था। गांधी जी ने वालण्टियरों से यह कहते हुए अपनी तक़रीर शुरू की—"आप लोग मेरे बैठने की जगह को इस तरह न सजाएँ और न उस पर खूबसूरत छत लगाएँ। मैं इन सब चीज़ों के खिलाफ़ हूँ। इनमें मेहनत और पैसे की फ़िज़ूल खर्ची होती है। ज़रूरत सिर्फ़ इतनी ही है कि एक ऊँची बैठक पर कोई साफ़ गादी बिछा दी

जाय, जिस पर मैं अपनी मांस रहित सूखी हड्डियों को टिका सकूँ। आज मैं उस सवाल पर कुछ कहना चाहता हूँ, जो ता० ३ की प्रार्थना-सभा में खड़ा हुआ था, और मुस्लिम दोस्तों द्वारा पढ़े गये सवाल का जवाब देने में लगे रहने से ता० ४ को मैं उस पर कुछ कह न सका। सवाल यों था—

"आप ने सलाह दी है कि जिन सूबों में ज़रूरी हिम्मत हो वे अपना आईन खुद बना लें, और यह साबित करने के लिए कि उन्होंने आज़ादी हासिल कर ली है, ब्रिटिश फ़ौज़ों से कह दें कि वे सूबा खाली करके चली जायँ। आप की राय में उन आज़ाद सूबों में मताधिकार या वोट देने के हक़का आधार क्या होना चाहिये। (२) क्या असेम्बलियों में फ़िरक़ेवाराना चुनाव-मंडलों की जगह धन्धों के आधार पर बने हुए चुनाव-मंडल क़ायम होने चाहियें ? क्या अलग अलग फ़िरक़ों द्वारा नुमाइन्दे भेजे जाने के बदले उद्योग-मंडल अपनें नुमाइन्दे भेजें ? और क्या उद्योग-मंडलों में अल्पमत वाले फ़िरक़ों के लिये कुछ जगहें रिज़र्व रख कर संयुक्त चुनाव-मंडल बनें ? क्या किसी ग्रूप या गिरोह को कुछ वक्त के लिये रियायती नुमायिन्दगी दी जाय ? अगर हाँ, तो किस ग्रूप को ? क्या हमें संयुक्त चुनाव-मंडल और पूर्ण बालिग़ मताधिकार का तरीक़ा अख्तियार करना चाहिये ?"

गांधीजी ने कहा—"मेरा जवाब साफ़ है। एक सूबा भी अपना विधान या आईन बना सकता है और उसे अपने यहाँ लागू कर सकता है; बशर्त्तें कि उसके पीछे छोटा-मोटा नहीं, बल्कि बहुत बड़ा बहुमत हो। मेरी मज़बूत राय है कि दुनिया की कोई ताक़त आज़ादी के उन प्रेमियों को अपने मक़सद में कामयाब होने से रोक नहीं सकती, जो अपने दुश्मनों को ख़त्म करने के लिए नहीं, बल्कि उनके हाथों खुद मरने के लिए तैयार हैं। एक वक्त मैंने अपनी यही राय ज़ाहिर की थी। मगर आज काफ़ी प्रगति हो चुकी है। मैं ब्रिटिश सरकार के कैबिनेट-मिशन द्वारा

तैयार किये गये दस्तावेज़ का अनुकूल अर्थ करता हूँ। मुझे लगता है कि कोई भी सूबा अपना पक्का इरादा ज़ाहिर करे, तो वे लोग उसका विरोध नहीं कर सकते। अगर यह बात एक सूबे के लिए—मान लीजिये कि बंगाल के लिए सच हो, तो अनेक सूबों की नुमाइन्दगी करने वाली कान्स्टिट्युएन्ट असेम्बली के लिए वह कितना सच होगा? मगर जहाँ तक हिन्दुस्तान की आज़ादी का ताल्लुक़ है, ब्रिटिश सरकार के कहने-सुनने की मुझे कोई परवाह नहीं। यह बात हिन्दुस्तान की जनता पर मुनहसिर है, किसी बाहरी ताक़त पर नहीं। यह सवाल भी नहीं है कि अगर स्टेट पेपर रद्द कर दिया गया, या वापस ले लिया गया, तो हिन्दुस्तान क्या करेगा। हिन्दुस्तान को अनिश्चय में ज़िन्दगी बिताने की आदत है। जब पंडित नेहरू और उनके साथियों ने मरकज़ी सरकार में पद ग्रहण किये, तब मैंने कहा था कि उनका यह काम गुलाब की सेज पर नहीं, बल्कि काँटों की सेज पर लेटने जैसा है। हमारा मक़सद आज़ादी हासिल करना है। और चाहे जो हो, हम आज़ादी लेकर रहेंगे।

"यह स्वाभाविक है कि जनता अहिंसा के सीधे से उसूल को बिना लाग-लपेट के पूरी तरह और मज़बूती से अपना ले, तभी मैं यह बात इतने विश्वास के साथ कह सकता हूँ। इससे उलटे अगर आप यह सोचते हों, कि आप अंग्रेज़ों को तलवार के ज़ोर से भगा सकेंगे, तो आप बहुत बड़ी ग़लती पर हैं। आप अंग्रेज़ों के निश्चय और धीरज को नहीं जानते। वे तलवार की ताक़त के सामने झुकने वाले नहीं हैं। मगर वे उस अहिंसा के धीरज का सामना नहीं कर सकते, जिसे मौत का बदला मौत से लेने से नफ़रत है। अहिंसा से ऊँची किसी ताक़त को मैं नहीं जानता। और अगर आप को अभी भी सच्ची आज़ादी नहीं मिली, तो मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि उसकी वजह आप लोगों का अहिसा को पूरी तरह से न अपनाना ही है। जो हो, मेरी राय में हिंदुस्तान ने अभी तक अहिंसा की जो ताक़त अपने में बढ़ाई है, स्टेट पेपर उसी का जवाब है।

"अगर आप पिछले महायुद्ध पर विचार करें, तो आप देखेंगे कि जहाँ एक ओर दुश्मन मानी जानेवाली ताक़तें कुचल दी गईं, वहाँ दूसरी ओर दोस्त मुल्कों को मिलनेवाली जीत कोरी जीत ही रही। दुश्मन और दोस्त मुल्कों के अनगिनत लोगों के मारे जाने के अलावा इस लड़ाई ने दुनिया से सारी खाने पीने की चीज़ें और कपड़ा समेट लिया। और इनमें से दोस्त-मुल्क तो इनसानियत से इतने गिर गये हैं कि वे दुश्मनों की ज़िन्दगी को गुलामी की हालत में पहुँचा देने की बेकार उम्मीद करते हैं। यह कहना कठिन है. कि दोस्त या दुश्मन मुल्कों में से कौन ज्यादा दया के क़ाबिल हैं। इस लिए मैं लोगों से कहता हूँ कि वे अहिंसा के उसूल को ईमानदारी से अपनायें और उससे पैदा हुए आत्मविश्वास में अपने को सुरक्षित मानते हुए आने वाले नतीजों का बहादुरी से सामना करें। जहाँ तक वोट देने के हक़ का ताल्लुक़ है, मैं यक़ीन दिलाता हूँ कि २१ या १८ वर्ष की उम्र से ऊपर के सब बालिग़ मर्द और औरतों को वोट देने का हक़ रहेगा। मैं अपने जैसे बूढ़ों को यह अधिकार नहीं देना चाहता। वोटर की हैसियत से ऐसे लोग किसी काम के नहीं। हिन्दुस्तान और बाक़ी की दुनिया उन लोगों के लिए नहीं है, जो मौत के किनारे खड़े हैं। उनके लिए मौत है—ज़िन्दगी जवानों के लिए है। इस तरह मैं चाहूँगा कि जैसे १८ बरस की उम्र से कम उम्र के लोगों को वोट देने का हक़ नहीं रहेगा, उसी तरह एक तै शुदा उम्र के बाद लोगों को—मान लीजिये ५० साल से ऊपर की उम्र के लोग—भी इससे महरूम रहेंगे। हाँ, आज़ाद हिन्दुस्तान में फ़िरक़ेवाराना मताधिकार को मैं कल्पना नहीं करता। निर्वाचन-मंडल संयुक्त होने चाहियें। उनमें कुछ जगहें रिज़र्व भले रखी जायँ। न मैं किसी फ़िरक़े के लोगों—मसलन् मुसलमान, सिक्ख, ईसाई या पारसियों के लिए किसी तरह की रियायत रखने की कल्पना करता। अगर किसी के साथ रियायत होगी ही, तो वह सिर्फ़ कोढ़ के रोगियों के लिए होगी।

वं समाज के गुनाहों के नतीजे हैं। अगर नैतिक कोढ़ी अपने पर प्रतिबन्ध लगायें, तो जिस्म के कोढ़ी बहुत जल्द ग़ायब हो जायँ। मगर वे ग़रीब, समाज से इतने डरे हुए हैं, कि वे अपना कोई दावा पेश नहीं करते। अगर उन्हें सचाई के साथ तालीम दी जाय, तो वे आदर्श नागरिक साबित होंगे। जो हो, बालिग़ मताधिकार के साथ-साथ या उससे भी पहले मैं मुल्क में आम जनता को तालीम देने की बात कहूँगा। साहित्य या अदब की तालीम उसमें मदद की तौर पर भले जोड़ दी जाय, मगर पूरी तालीम का साहित्यिक या अदबी होना ज़रूरी नहीं है। मैं पूरी तरह मान गया हूँ कि अंग्रेज़ी की तालीम ने हमारे दिमाग़ों को भूखों मारा है, उन्हें कमज़ोर बनाया है और हमें बहादुर नागरिक बनने के लिए कभी तैयार नहीं किया। उन तरक्क़ी पाई हुई ज़बानों में, जिन पर दुनिया का कोई भी मुल्क फ़ख्र महसूस कर सकता है, मैं आपको सारी ज़रूरी जानकारी (तालीम) दूँगा। अगर लोग ईमानदारी और लगन से काम करें, तो प्रजा को नागरिकता के अधिकारों को समझने की तालीम थोड़े ही समय में दी जा सकेगी।"

गांधीजी ने प्रार्थना के बाद के अपने भाषण में कहा—"मुझे मारवाड़ी रिलीफ़ सोसायटी के मेडिकल सुपरिण्टेण्डेण्ट का एक ख़त मिला है। उन डॉक्टर ने लिखा है कि वे बिना किसी भेद-भाव के हिन्दू और मुसलमान दोनों का इलाज करते हैं। मुसलमान मर्द और औरतें खुशी-खुशी उनकी सेवा मंजूर करते हैं। उन्होंने यह देखा कि इस हिस्से के मुसलमान बहुत ग़रीब हैं। जहाँ कहीं वे जाते हैं, उन्हें कूड़ा-करकट और गन्दगी दिखाई देती है। उन्होंने मुझ से पूछा है—'क्या आप इस बारे में कुछ कहेंगे'? मैं खुशी से ऐसा करूँगा; क्योंकि मैं ५० बरस से भी ज्यादा अरसे से सफाई और स्वास्थ्य के उसूलों का पुजारी रहा हूँ। मुझे पच्छिम के देशों की बहुत निन्दा करनी पड़ी है। इस लिए यह कहने में मुझे खुशी होती है कि सफ़ाई के उसूल मैंने अंग्रेज़ों से सीखे

हैं। मुझे यह देख कर दुःख होता है कि नोआखाली में जिन तालाबों का पानी लोग पीते हैं, उन्हीं में कपड़े और बरतन वग़ैरा भी साफ़ करते हैं। यह ग़लत चीज़ है। लोग लापरवाही से हर जगह थूकते व नाक साफ़ करते हैं और सड़कों, गलियों और पगडण्डियों को गन्दा करते हैं। हिन्दुस्तान में इसी कारण से कई बीमारियाँ फैलती हैं। इसमें कोई शक नहीं कि लोगों की सदियों से चली आ रही ग़रीबी इन बीमारियों के लिए ज़िम्मेवार है। लेकिन स्वास्थ्य और सफ़ाई के कानूनों को तोड़ने की उनकी पुरानी आदत भी इसके लिए कम ज़िम्मेवार नहीं। ऐसी हालत में हिन्दुस्तान ज़िन्दा है, यही ताज्जुब की बात है। लेकिन हिन्दुस्तान में मरनेवालों की संख्या दुनिया के सब देशों से ज्यादा है। अमेरिका में शायद सब से कम लोग मरते हैं। और, हिन्दुस्तान में जो लोग ज़िन्दा हैं, वे भी मुर्दों से कम नहीं! इस लिए नोआखाली के लोग जितनी जल्दी सफ़ाई और सेहत के उसूलों पर ध्यान देंगे, उतना ही उन्हें फ़ायदा होगा। सेहत के उसूलों को पूरी तरह पालने में लोगों की ग़रीबी कोई रुकावट नहीं डालती।

"दूसरे, दूर और पास के अखबारनवीसों ने तो इस हिस्से पर धावा ही बोल दिया है। 'प्रेस-कैम्प' यह नाम बड़ा सुन्दर मालूम होता है। लेकिन यह प्रेसवालों की छावनी' मेरे और गाँव के वातावरण से मिलती जुलती है। मेरे आस पास की दुनिया में दिखावे को कोई जगह नहीं। जो प्रेस वाले मेरे साथ रहते हैं, उन्हें कई मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। गाँववाले जैसी झोपड़ियाँ उन्हें दे सकते हैं, उन्हीं में वे रह लेते हैं। उन्हें काफ़ी जगह नहीं मिलती। मैं सलाह दूँगा कि वे बाहर घूमने का खतरा न मोल लें और पाँच या छह जन जो खबर उन्हें दे सकें, उसी से सन्तोष कर लें। मेरे नंगे पाँव की यात्रा के बारे में सनसनी फैलाने की ज़रूरत नहीं। लोगों को भी इससे हैरान नहीं होना चाहिये। नंगे पाँवों चलना मेरे लिए मुश्किल नहीं। नोआखाली की ज़मीन मखमल

की तरह मुलायम है और उसकी हरी घास चलने वाले को आलीशान कालीन की तरह मालूम होती है। इसे देख कर मुझे इङ्गलैण्ड की हरी मुलायम घास याद आ जाती है। नोआखाली की ज़मीन और घास पर चलने के लिए चप्पल या सेण्डल पहनना बिलकुल ज़रूरी नहीं। मैं गुजरात में शायद नंगे पाँवों नहीं चल सकता था। और फिर मुझ में अपने देश की परम्परा की विरासत भी तो है न! यहाँ तीर्थ यात्रा हमेशा नंगे पावों ही की जाती थी। मेरे लिए यह यात्रा सच्ची तीर्थ यात्रा ही है। लेकिन प्रेसवालों को और दूसरे लोगों को उसकी ओर न खिंचना चाहिये। इससे मुझे यक़ीनन् कोई थकान नहीं मालूम होती। और अगर भगवान् चाहेगा, तो वह मुझे इस तीर्थ यात्रा को पूरी करने की ताक़त देगा। प्रेसवाले अपने उस पैसे और वक्त को बचायें, जो वे आगे नोआखाली-राहत-फण्ड में या कभी न ख़त्म होने वाले हरिजन-फण्ड में दे सकेंगे।

इसके बाद गांधीजी ने उनसे पूछे गये सवालों का जवाब दिया।

स०—मान लीजिये कि हिन्दुस्तान के सूबों में से एक या दूसरा सूबा अपनी आज़ादी का ऐलान करना चाहता है, तो आप उसे किस तरह का विधान या आईन बनाने की सलाह देंगे? सन् १९२५ में आपने कहा था कि मेरी कल्पना के आज़ाद हिन्दुस्तान में सिर्फ़ वे ही लोग वोट दे सकेंगे, जिन्होंने 'जिस्मानी काम' करके स्टेटकी कोई सेवा की हो। क्या अपनी आज़ादी का ऐलान करना चाहने वाले सूबों को आज भी आप यही सलाह देंगे?

ज०—सूबों की आज़ादी में और समूचे हिन्दुस्तान की आज़ादी में कोई फ़र्क़ नहीं होगा। मैं अपनी १९२५ वाली बात पर आज भी क़ायम हूँ, यानी किसी ख़ास उमर से ऊपर के सारे नौजवान मर्द और औरत वोट दे सकेंगे, बशर्ते उन्होंने अंग-मेहनत करके स्टेट की कोई सेवा की हो। इस तरह एक मामूली मज़दूर भी आसानी से वोट दे सकेगा, जब

कि स्टेट के लिए किसी तरह की अंग-मेहनत न करने वाला पूँजीपति या वकील या व्यापारी आसानी से ऐसा नहीं कर सकेगा।

स०—अगर हिन्दुस्तान के आपस में जुड़े हुए सूबे आज़ादी का ऐलान न करें, बल्कि दूर-दूर बिखरे हुये सूबे ही ऐसा करें, तो क्या इस तरह के अलग-अलग सूबे बाक़ी के एक संघ में मिले हुए सूबों के आम कामकाज में मुश्किलें पैदा न करेंगे ?

ज०—अगर मेरी कल्पना का, यानी अहिंसा को मानने वाला समाज हो, तो कोई मुश्किल पैदा नहीं होगी। इस तरह मान लीजिये कि घनी आबादी वाला बंगाल अपने प्रतिभा वाले टैगोरों और सुहरावर्दियों की मदद से आज़ादी की बुनियादवाला कोई आईन या विधान बना ले, और आसाम अफीमची जैसा हवाई क़िले ही बनाया करे, नर-कंकालोंवाला उड़ीसा कुछ करने की इच्छा ही न रक्खे और बिहार परिवार की मार-काट में ही लगा रहे, तो बंगाल उन तीनों पर अपना असर डालेगा और उन पर हावी हो जायगा। मेरी आज़ादी की स्कीम में इस तरह की छूत क़ुदरती तौर पर मौजूद है, जो सबकी दोस्त और किसी की दुश्मन नहीं है। हो सकता है कि मेरी इस बात पर आज कोई ध्यान न दे। अगर ऐसा ही हो, तो यह हिन्दुस्तान का दुर्भाग्य है।

स०—क्या आप आज़ाद सूबों के विधान के इस तरह लुभावना बनने की उम्मीद रखते हैं कि दूसरे सूबे अपने-आप उसकी तरफ़ खिच जायँ ?

ज०—हर ऐसी चीज़ में लुभावनापन मौजूद रहता ही है, जो क़ुदरती तौर पर भली हो।

स०—खयाल कीजिये कि पूरा ए ग्रूप एक आम विधान बना लेता है, तो क्या आप यह सोचते हैं कि वे सूबे, जो अब बी और सी ग्रूप के मातहत हैं, चाहने पर ए ग्रूप में शामिल हो सकेंगे ?

ज०—बिना कहे यह बात साबित होती है कि, अगर ए ग्रूप अच्छा विधान बनाने में कामयाब हो जाता है, तो न सिर्फ़ बी और सी ग्रूप को

उसमें शामिल होने की आज़ादी रहेगी, बल्कि वे ख़ुद बिना रुके उसकी तरफ़ खिंच आयेंगे।

स०—रियासतों का क्या होगा ? कोई रियासत संघ में शामिल हो या न हो, इसका फ़ैसला मौजूदा राजा-महाराजा करेंगे या वहाँ की प्रजा ? अगर इसका फ़ैसला प्रजा के हाथ में हो, तो आप मौजूदा रियासतों के विधानों में सबसे पहले किन तबदीलियों की उम्मीद करते हैं ?

ज०—रियासत की मामूली रिआया होकर भी देश के करोड़ों लोगों से मेरा सम्बन्ध है। कहने के लिये चाहे हिन्दुस्तान में ६४० राजा हों, लेकिन असल में तो वे शायद १०० से भी कम हैं। उनकी तादाद कितनी ही क्यों न हो, लेकिन वे इतने थोड़े हैं कि जागे हुए हिन्दुस्तान में वे रिआया के सच्चे सेवक बनकर ही जी सकते हैं। सवाल में इस डर का ज़िक्र किया गया है कि अंग्रेज़ बेईमानी करके राजाओं को रिआया के सामने खड़ा कर देंगे। लेकिन यह डर झूठा है। कैबिनेट मिशन के दस्तावेज का यह रुख नहीं मालूम होता। लेकिन हिन्दुस्तान ब्रिटिश कैबिनेट के भरोसे क्यों रहे ? जब हिन्दुस्तान आज़ादीके लिये कमर कस लेगा, तो अंग्रेज़, राजे-महाराजे, या कई ताक़तों का संघ भी उसे आज़ादी-जिसे लोकमान्यने 'जन्मसिद्ध अधिकार' कहा है—के ध्येय को हासिल करने से नहीं रोक सकेगा।

गांधीजी ने प्रार्थना के बाद की तक़रीर में उनसे पूछे गये सवालों का जवाब देना शुरू किया।

स०—आप हमेशा खैरात के खिलाफ़ रहे हैं और इस उसूल को समझाते रहे हैं कि कोई भी इनसान 'ब्रेड लेबर' यानी रोटी के लिये जिस्मानी मेहनत करने के फ़र्ज़ से बरी नहीं है। आपकी उन लोगों के लिए क्या सलाह है जो बैठे-बैठे का धन्धा करते हैं और पिछले दंगों में अपना सब-कुछ खो चुके हैं ? क्या उन्हें अपना वतन छोड़ कर ऐसी जगह चला जाना चाहिये जहाँ वे अपनी पुरानी आदत के मुताबिक़ जीवन

चिता सकें ? या उन्हें आपके 'हर आदमी को रोटी कमाने के लिये जिस्मानी मेहनत करनी चाहिये' वाले उसूल के मुताबिक़ अपना जीवन ढालने की कोशिश करनी चाहिये ? उस हालत में उनकी ख़ास .खूबियाँ किस काम आयेंगी ?

ज०—जैसा कि समझा जाता है, यह सच है कि मैं बरसों से ख़ैरात के ख़िलाफ़ रहा हूँ, और रोटी के लिए जिस्मानी मेहनत करने की नसीहत करता रहा हूँ। ज़िला मजिस्ट्रेट, ज़माँ साहब और एक पुलिस अफ़सर मुझसे मिलने आये थे। वे बेआसरा लोगों को ख़ैरात देने के बारे में मेरी राय जानना चाहते थे। उन्होंने पहले से यह तय कर लिया है कि वे लोगों के सामने पानी में से 'हैयासिन्थ' निकालने, सड़कों की मरम्मत करने, गाँवों का सुधार करने और .खुद के खेतों की हद सुधारकर सीध में लाने और अपनी ज़मीन पर मकान बनाने का काम रक्खेंगे। जो लोग इनमें से कोई भी काम करेंगे, उन्हें रेशन पाने का पूरा हक़ होगा। मैं इस खयाल को पसन्द करता हूँ। लेकिन अपने उसूलों पर अमल करने वाले के नाते मैं बेआसरा लोगों को एकदम कोई काम करने के लिये मजबूर नहीं करूँगा। कई तरह के काम लोगों के सामने रख देने चाहियें, और एक महीने की नोटिस देकर हाकिमों को उन्हें यह कह देना चाहिये कि, अगर आप सुझाये गये कामों में से कोई काम नहीं चुनते और न कोई मंज़ूर करने लायक दूसरा धन्धा ही सुझाते, बल्कि हट्टे-कट्टे होने पर भी काम करने से इन्कार करते हैं, तो मोहलत के खतम होने पर हमें न चाहने पर भी आप लोगों को ख़ैरात देना बन्द करना पड़ेगा। बेआसरा लोगों और उनके दोस्तों को मेरी यह सलाह है कि सरकार की इस स्कीम में वे पूरी मदद करें। किसी भी शहरी के लिए बग़ैर जिस्मानी मेहनत के रेशन की आशा रखना ग़लत होगा।

मैं लोगों को वतन छोड़ने की सलाह कभी नहीं दे सकता। मैं चाहूँगा कि एक अकेला हिन्दू भी हर हालत में अपने को सहीसलामत

समझे और मुसलमानों से उम्मीद रक्खूँगा कि वे अपने बीच उसे पूरी तरह सलामत रक्खें। मैं इस बात का स्वागत करूँगा कि लोग अपने-अपने ढंग से ईश्वर की पूजा करें।

सट्टे से कमाया हुआ रुपया मेरे खयाल में यक़ीनन जायज़ रुपया नहीं है। और न मैं यह मानता हूँ कि किसी आदमी के लिये अपनी बुरी आदतों को छोड़ना कभी नामुमकिन है। अगर हर एक आदमी अपने पसीने की कमाई पर रहे, तो यह दुनिया स्वर्ग बन जाय। इनसान की ख़ास ख़ूबियों के इस्तेमाल के सवाल पर अलग से विचार करने की बिलकुल ज़रूरत नहीं। अगर सब लोग रोटी के लिये जिस्मानी मेहनत करें, तो उसका यह नतीजा होगा कि कवि, शायर, डॉक्टर, वकील वग़ैरा इनसान की सेवा के लिए अपनी उन ख़ूबियों का मुफ्त इस्तेमाल करना अपना फ़र्ज़ समझेंगे। बिना किसी ग़रज़ के अपना फ़र्ज़ अदा करने के कारण उनके काम का नतीज़ा और भी अच्छा होगा।

८—२—'४७

गांधीजी ने आज बड़ी भारी सभा के सामने भाषण किया। औरतों को छोड़ दिया जाय, तो आज की सभा में जितने हिन्दू आये थे, लगभग उतने ही मुसलमान भी थे। गांधीजी ने अपने एक मुलाक़ाती दोस्त के भेजे हुए चार सवालों का जवाब दिया।

स०—मुसलमान हिन्दुओं का बायकाट कर रहे हैं। इसलिए ज़रूरत से ज्यादा ज़मीनवाले हिन्दू बड़ी मुसीबत में फँस गए हैं। आप उन्हें क्या सलाह देंगे? उस बाक़ी की ज़मीन के बारे में वे क्या करें, जिसे हाथ में हल लेकर भी वे ख़ुद जोत नहीं सकते?

ज०—मैंने इस बायकाट के बारे में सुना है और पिछली सभाओं में उसके बारे में कुछ कहा भी है। मुझे उम्मीद है, मैंने सचमुच सुना है, कि नोआखाली का यह बायकाट आम नहीं है। शायद थोड़े ही लोग इस में हिस्सा ले रहे हैं। उसका फैलाव कितना ही क्यों न हो,

वह सचमुच ग़लत चीज़ है। इससे न तो बायकाट करनेवालों को कोई फ़ायदा होगा, और न उन लोगों को जिनका बायकाट किया जाता है। लगभग पिछले साठ बरसों से मेरी यही राय रही है। लेकिन अगर नोआखाली के मुसलमान हिन्दुओं को अपने दुश्मन समझें और उन्हें यहाँ से निकालना चाहें, तो वैसी हालत में यह बायकाट मुमकिन हो सकता है। उसका मतलब लड़ाई का एलान करना होगा, जिसके डर से हर हिन्दुस्तानी सहम उठेगा। कुछ इने-गिने लोगों के बायकाट के बारे में मेरी राय साफ़ है। ऐसी हालत में बायकाट किये गये हिन्दुओं को चाहिये कि अपनी ज़मीन को आस्ट्रेलियनों की तरह बिन जोती पड़ी रहने दें, या ज़रूरत से ज्यादा ज़मीन को बेच डालें। सब से अच्छी बात यह है कि कोई भी शख्स ज़रूरत से ज्यादा चीज़ अपने पास न रक्खे। इस आदर्श तक पहुँचने की समाज को कोशिश करनी चाहिये।

स०—आप यहाँ पिछले तीन महीनों से काम कर रहे हैं। क्या इससे हिन्दुओं की वृत्ति या ज़हनियत में कोई ख़ास तब्दीली हुई है।

ज०—इसका सबसे अच्छा जवाब तो हिन्दू ही दे सकते हैं। फिर भी मैं तो यह विश्वास करने लगा हूँ कि, थोड़े वक्त के लिये तो हिन्दुओं ने कुछ हद तक अपना डर छोड़ दिया है।

स०—यहाँ के मुसलमानों में एक हिस्सा सचमुच शान्ति-पसन्द है। आपके उनके बीच इतने दिनों रहने के बाद क्या उन पर आपकी बातों का इतना असर पड़ा है कि वे अपने समाज के बुरे-से-बुरे लोगों के सामने अपनी बात ज़ोर देकर कह सकें?

ज०—मुझे यह जान कर ख़ुशी हुई कि सवाल करनेवाले भाई ने यह क़बूल किया कि नोआखाली के मुसलमानों का एक हिस्सा शान्ति-प्रसन्द है। अगर ऐसा न होता, तो यह बड़ी डरावनी बात होती। उनमें मुस्लिम समाज के बुरे और गुण्डे लोगों का विरोध करने की ताक़त पैदा हुई है या नहीं, इस सवाल का मेरा जवाब तो यही है जो मैंने दूसरों

सवाल का दिया है। मुसलमान दोस्त ही इतमीनान के साथ इसका जवाब दे सकते हैं। लेकिन मैं तो यह विश्वास कर लेता हूँ कि कई मुसलमान दोस्तों पर मेरी बातों का ऐसा असर पड़ा है। मिसाल के तौर पर भाटियालपुर के एक मुस्लिम गवाह ने दंगे में बरबाद कर दिये गये और मेरे द्वारा फिर खोले गये मन्दिर के बारे में यह कहा था कि आइन्दा हम अपनी जान देकर भी इसे बरबादी से बचायेंगे। अपनी यात्रा में मुझे दूसरी भी धीरज बँधानेवाली कई मिसालें मिली हैं।

स०—आपकी रहनुमाई में कई कार्यकर्त्ता गावों में काम कर रहे हैं। मुक़ामी हिन्दू या मुस्लिम जनता पर उनके काम का क्या फल हुआ? आपके यहाँ न रहते भी क्या उनका असर लोगों पर आज जैसा ही पड़ता? क्या आपके कार्यकर्त्ताओं का मौजूदा असर हमेशा के लिए क़ायम रह सकेगा?

ज०—अगर मैं पवित्र बना रहूँ और मेरी कथनी और करनी में कोई फ़र्क़ न हो, तो मेरे मरने के बाद भी मेरा काम ज़रूर ज़िन्दा रहेगा। मेरा विश्वास है कि कार्यकर्त्ता के ज़ाती और पब्लिक जीवन में पूरा-पूरा मेल होना चाहिये। इसी तरह, अगर मेरे साथी सेवा की पवित्र भावना से काम करेंगे, भीतर और बाहर से पवित्र बने रहेंगे और मेरे आसपास की चकाचौंध से खिंचकर यहाँ न आये होंगे, तो वे एक-से उत्साह और लगन से काम करते रहेंगे और वक्त आने पर उनका मिला-जुला काम फूले-फलेगा। मैंने इस अन्धविश्वास को कभी नहीं माना कि कोई अच्छा काम कार्यकर्ता के साथ ही ख़त्म हो जाता है। इसके खिलाफ़, तमाम सच्चे और ठोस काम कार्यकर्त्ता को अमर बना देते हैं, क्योंकि वे उसकी मौत के बाद भी ज़िन्दा रहते हैं।

गांधीजी की पैदल यात्रा की डायरी

गांधीजीने प्रार्थना-सभा में कहा—"अपनी निगाह में लाई गई दो बातों की ओर मैं आप लोगों का ध्यान खींचना चाहता हूँ। पहली बात यह है कि जो शिकायत बदकिस्मती से मेरे मारफ़त भेजी गई थी, वह अफ़सरों के जाँच करने पर, बेबुनियाद साबित हुई। वे सब चीज़ें, जो लूटी गई कही जाती थीं, ज्यादातर उसी जगह पाई गईं, जहाँ से उनके लूटे जाने की बात कही गई थी। यह खतरनाक बात है। यह मेरे ध्यान में आया हुआ ऐसा दूसरा मामला है। कल कुछ मुसलमान दोस्त मेरे पास आये थे। उन्होंने यह क़बूल किया कि, 'पिछली अक्तूबर में यहाँ के मुसलमान सचमुच पागल बन गये थे। लेकिन वे बिहार के हिन्दुओं की तरह बुरे नहीं थे। फिर भी नोआखाली के हिन्दू कुछ लोगों के खिलाफ़ सरकार में झूठी शिकायतें करके मुसलमानों को मुसीबत में फँसाकर उनसे बदला लेना चाहते हैं। झूठी शिकायतों की तादाद सच्ची शिकायतों से बहुत ज्यादा है। दोनों जातियों को मिलाने का यह रास्ता तो नहीं है'। मैंने उनसे कहा कि झूठी शिकायतें लिखाने वाले सब लोगों पर मुक़दमा चलाया जाना चाहिये और क़सूर साबित होने पर उन्हें सख्त सज़ा दी जानी चाहिये। अगर मैं पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट या वज़ीर होता, तो मैं सचमुच झूठी शिकायत करने वालों पर मुक़दमा चलाता और उन्हें सज़ा देता। जहाँ तक मेरा निजी सम्बन्ध है, अपने देश की सेवा करने की इच्छा रखने वाले एक शहरी के नाते मैं तभी इस बारे में कुछ कर सकूंगा, जब मुझे झूठी क़सम खाकर शिकायत करने वाले लोगों के नाम और पते दिये जायँगे। अभी तक मेरे पास एक ही ऐसा मामला भेजा गया था, लेकिन जब शिकायत करने वाले भाई से शिकायत की ताईद में गवाह पेश करने की बात कही गई, तो वे ऐसा न कर सके। आम तौर पर मैं यही कहूँगा कि जिन हिन्दुओं ने झूठी शिकायतें की हैं,

उन्होंने अपने-आप को, अपने हिन्दू भाइयों को और अपने देश को नुक़सान पहुंचाया है।

"एक और बात की तरफ़ मैं आप लोगों का ध्यान खींचना चाहता हूं। मुझे एक ऐसे ज़िम्मेवार आदमी का खत मिला है, जो दोनों जातियों में मेल पैदा कराने का काम कर रहे हैं। उन्होंने लिखा है कि एक हिन्दू लड़के को कुछ मुसलमानों ने खूब सताया और हिन्दुओं को यह धमकी दी है कि मेरे नोआखाली छोड़ देने के बाद, या यों कहिये कि मेरे मर जाने के बाद, उन्हें पिछले अक्तूबर से भी ज़्यादा बुरे दिन देखने पड़ेंगे। मैं इस बात को झूठ मान लेना चाहूँगा। लेकिन मुझे इसके झूठेपन में शक है। फिर भी मुझे पूरी उम्मीद है कि यह ज़हर कुछ बदमाशों तक ही फैला है। यह ज़हर कुछ लोगों तक महदूद हो, चाहे बड़े पैमाने पर फैला हो, लेकिन मैं हिम्मत के साथ यह कहूँगा कि यह चीज़ इस्लाम के बिलकुल खिलाफ़ है। यह बात मैं, फज़लुल हक़ साहब से माफ़ी माँगते हुए, पूरी मज़बूती के साथ कहता हूँ। जब इस्लाम या दूसरा कोई धर्म बाहरी टीका को सहन करने का धीरज खो देगा, तो वह उसका पतन का दिन होगा। मैं अपने-आप को बाहरी नहीं मानता। मैं अपने ही धर्म की तरह इस्लाम को और दूसरे धर्मों की इज्ज़त करता हूँ। और इसी लिए मैं इस्लाम की हमदर्द और दोस्ताना टीका करने का दावा रखता हूँ। हर एक भले मुसलमान का यह फ़र्ज़ है कि वह इस ज़हरीले प्रचार या प्रोपेगैण्डा का मज़बूती से साफ़-साफ़ शब्दों में विरोध करे।"

१८–२–४७

हमेशा के माफ़िक़ आज भी गांधीजी ने अपने सामने रक्खे गये तीन सवालों का जवाब दिया।

स०—अगर लीगी सरकार या बड़ी तादाद वाली जाति हमें पूरा

हरजाना देना मञ्जूर कर ले, तो क्या हिन्दुओं को दंगे में बरबाद हुए हिस्सों को छोड़ देना चाहिये।

ज०—मैंने अहिंसा की निगाह से इस चीज़ का समर्थन या ताईद की थी। यह चीज़ सभी सूबों पर लागू की जा सकती है, फिर ज्यादा तादाद मुसलमानों की हो या हिन्दुओं की। अगर ज्यादा तादादवाले लोग ऐसे खिलाफ़ हो जायँ कि कम तादाद वालों का अपने साथ रहना ही गवारा न करें, तो सरकार क्या कर सकती है ? मेरी राय में सरकार का बड़ी तादादवाली जाति को जबरन इसके लिये राज़ी करना ग़ैरमुनासिब होगा। वह संगीनों के बल पर कम तादादवाले लोगों की रक्षा का भार भी अपने ऊपर नहीं ले सकती। मिसाल के तौर पर, मान लीजिये कि ज्यादा तादाद वाली जाति राम-धुन या ताल देने की सहन नहीं करती; इस बात को सुनती ही नहीं कि राम किसी मनुष्य का नहीं बल्कि भगवान का ही नाम है, कि हिन्दू राम-धुन के साथ ताल देने में श्रद्धा रखते हैं; और यह भी मान लीजिये कि मुसलमान यह सब गवारा नहीं करते, तो मैं बिना किसी हिचकिचाहट के यह कहूँगा कि कम तादाद वाली जाति को अपना वतन छोड़ देना चाहिये, बशर्तें कि मुनासिब हरजाना दिया जाय।

स०—जो कार्यकर्त्ता यहाँ तीन या चार महीने पहले आये हैं, उन्हें बहुत बड़ी जिस्मानी और मानसिक मुश्किलों का सामना करना पड़ा है। इसके अलावा, अक्सर उन्हें बड़े-बड़े नेताओं की उचित सलाह भी नहीं मिली। अब, क्योंकि आमद-रफ्त थोड़ी आसान हो गई है, रहनुमा बनना चाहनेवाले लोग कार्यकर्त्ताओं को अलग-अलग दिशाओं में खींच रहे हैं। कार्यकर्त्ता इस तरह अलग-अलग दिशाओं में बँटी हुई सलाहों से कैसे बचें और कैसे अपने तय किये हुए काम को अच्छी तरह पूरा करें!

ज०—जो कार्यकर्त्ता काम करते करते थक गये हों, उन्हें आराम करने का पूरा हक़ है। अलग अलग नेताओं की एक-दूसरे के खिलाफ़ दी जानेवाली सलाह से जिन कार्यकर्त्ताओं का ध्यान बँट जाता है, उन्हें

मैं कहूँगा कि वे अपने नेता चुन लें और उनकी सलाह मानें। लेकिन ऐसा वे तभी करें, जब चुने हुए नेताओं की बात उनके दिल और दिमाग़ को अपील करे। जहाँ दो नेताओं के बीच विरोध हो, वहाँ कार्यकर्त्ता खुद अपने दिल और दिमाग़ की बात मानें। सब धर्मों की यही आज्ञा है। अगर मज़हबी मामलों में ऐसा किया जा सकता है, तो दुनियावी मामलों में—खासकर नोआखाली में, जहाँ का सवाल इतना सादा है—यह और भी ज्यादा किया जा सकता है। कार्यकर्त्ताओं का यह फ़र्ज़ है कि वे दोनों तरह की बातों में मेल कर लें और एक को दूसरी के खिलाफ़ कभी न जाने दें।

स०—मुसलमानों ने जिन औरतों को लौटा दिया है, वे अपने में आशा और हिम्मत का संचार करने के लिये बाहरी स्त्री-कार्यकर्त्ताओं पर बहुत ज्यादा मुनहसिर करती हैं। इसे कब तक बढ़ावा दिया जा सकता है। क्या धीरे-धीरे बाहर के सारे कार्यकर्त्ताओंको वापस नहीं बुला लिया जाना चाहिये?

ज०—जो चीज़ पुरुष-कार्यकर्त्ताओं के लिए सही है, वही स्त्री कार्यकर्त्ताओं के लिए भी। वे यहाँ लोगों में भगवान् की श्रद्धा पैदा करने और उन्हें हिम्मतवर बनाने के लिए आये हैं, न कि अपनी ग़ैरमौजूदगी में लोगों को लाचारी महसूस कराने के लिए। उन्हें अपने-अपने गाँवों की औरतों को साफ़-साफ़ यह कह देना चाहिये कि हम थोड़े समय के लिए ही गावों में रहेंगी। इसलिए आप को अपने पर भरोसा करना सीखना चाहिये। आपको अपना श्रद्धा और इज़्ज़त के लिए मरने की कला सीखना ही चाहिये।

पहला सवाल, जिसका प्रार्थना-सभा में गांधी जी को जवाब देना पड़ा, यह था—

स०—नोआखाली के दिलचस्पी रखने वाले लोग जिस हिन्दू कार्यकर्त्ता के बारे में जान-बूझ कर ग़लतबयानी करते हों, उसे क्या करना चाहिये?

ज०—अहिंसा के शब्दों में मामूली तौर पर जवाब यह होगा कि कामों को अपनी बात खुद कहने दी जाय। मगर यह अच्छा होने पर भी, कुछ मौक़े ऐसे होते हैं जब कि बोलना और कैफ़ियत देना फ़र्ज़ और न बोलना झूठ के बराबर हो जाता है। इस लिए अक्लमंदी का तक़ाज़ा है कि कुछ मौक़ों पर काम करने के साथ बोलना ही चाहिये। बेशक ऐसे मौक़े भी होते हैं जब बोलने और काम करने की जगह सिर्फ़ विचार ले सकता है। यह गुण परमेश्वर का है और शायद अरबों में एक के हाथ लग सकता है। मुझे तो ऐसी किसी मिसाल की जानकारी नहीं।

इस के बाद उन्होंने नीचे लिखे सवालों के जवाब दिये—

स०—आपने ज्यादा तादादवाले लोगों के पक्के तौर से मुख़ालिफ़ हो जाने पर हिज़रत करने की सलाह दी है। मगर आपने यह भी कहा है कि सच्चे अहिंसक को प्रेम के ज़रिये अपने विरोधी को बदल लेने की आशा कभी नहीं छोड़नी चाहिये। इस हालत में कोई अहिंसक आदमी कैसे हार मञ्ज़ूर करके हिजरत कर सकता है?

ज०—यह बिलकुल सही है कि कोई अहिंसक आदमी अपनी जगह से न जायगा। ऐसे आदमी के मुआवज़े का कोई सवाल नहीं होगा। वह अपनी जगह पर मर कर साबित करेगा कि उसकी मौज़ूदगी राज और समाज के लिए खतरनाक नहीं थी। मैं जानता हूँ कि नोआखाली के हिन्दुआ का ऐसा कोई दावा नहीं है। वे सीधे-सादे लोग हैं, जो दुनिया से प्रेम करते हैं और शांति और सही-सलामती के साथ दुनिया में रहना चाहते हैं। अगर सरकार ज्यादा तादाद वालों की शांति के लिए ऐसे लोगों को इज़्ज़त के साथ मुआवज़ा देती है, तो वे सोचेंगे कि उनकी इज़्ज़त जाने में है या रहने में। अगर सिर्फ़ हिन्दुओं की मौजूदगी से ही मुसलमानों को, जो ज्यादा तादाद में हैं, चिढ़ पैदा हो तो मैं सरकार का फ़र्ज़ मानूँगा कि वह मुआवज़ा दे। इसी तरह हिन्दुओं की ज्यादा तादाद वाले प्रांतों की सरकारों का भी फ़र्ज़ होगा कि अगर ज्यादा

तादाद वालों को मुसलमानों की मौज़ूदगी से ही चिढ़ होती हो, तो वह उन्हें मुआवज़ा दे दें।

स०—सरकार अगर हिजरत करने की सलाह दे तो क्या बाहर जाने वालों को

(अ) अपनी सब हट सकने वाली और न हट सकने वाली मिलकियतके लिए और

(आ) व्यापार के नुक़सान के लिए

मुआवज़ा माँगना चाहिये? दूसरे शब्दों में, आप के खयाल से काफ़ी मुआवज़ा क्या होगा?

ज०—जब हटाई जा सकने वाली सम्पत्ति को जाने वाला ले न जा सके, या ले न जाय तब इसके और न हटाई जा सकने वाली सम्पत्ति के लिए सरकार मुआवज़ा देने को मजबूर होगी। व्यापार का नुक़सान एक कठिन सवाल है। मैं कल्पना नहीं कर सकता कि किसी सरकार के लिए इस क़िस्म के मुआवज़े का भार उठाना संभव है। मैं उस प्रस्ताव को तो समझ सकता हूँ जिसमें नई जगह में व्यापार शुरू करने के लिए उचित रक़म की माँग की गई है।

मैंने हिजरत की संभावना की छानबीन की है। और मैं उसे मानता हूँ। मगर मेरा सारे हिन्दुस्तान का तजरबा बताता है कि हिन्दू और मुसलमान आपस में शान्ति से रहना जानते हैं। मैं विश्वास करने से इनकार करता हूँ कि लोगों ने अपनी अक्ल को इस क़दर तिलांजलि दे डाली है कि वे अब एक-दूसरे के साथ शान्ति से, जैसा कि पीढ़ियों से होता चला आया है, रह ही नहीं सकते। क्योंकि, मैं कवि इक़बाल ने जो यह कहा है उस पर विश्वास करता हूँ कि "हिन्दू और मुसलमानों के पास, जो सदियों से ऊँचे हिमालय की छाया में रहे हैं और जिन्होंने गंगा और जमना का पानी पिया है, दुनिया के लिए एक अनोखा सँदेशा है।"

२०—२—'४७

गांधीजी ने प्रार्थना-सभा में चार सवालों के जवाब दिये।

स०—अगर आप समझते हों कि सरकार कम तादादवालों का बायकाट कर सकती है, यानी काफ़ी मुआवज़ा देकर उन्हें निकाल सकती है, तो क्या लोगों को मौक़े से फ़ायदा उठा कर चले नहीं जाना चाहिये?

ज०—जो लोग मौक़े से फ़ायदा उठाना चाहते हैं उन से और अगर हिन्दुओं को ले जाने के लिये हिन्दुओं का ही मंडल बनाया जाय, तो उससे भी मेरा कोई मेल नहीं हो सकता। मैं इस तरह की किसी योजना में शामिल नहीं हो सकता। इसका पूरा भार तो ज्यादा तादाद-वाले समाज पर और सरकार पर है। मेरा इतना ही मतलब था कि जब वे अक्ल का दिवालियापन ज़ाहिर कर दें तब काफ़ी मुआवज़ा मिलने पर, कम तादादवाले समाज को चला जाना चाहिये। दूसरा तरीक़ा हिंसा का यानी घरेलू जंग का तरीक़ा है, अहिंसा का नहीं।

स०—आपने कहा है कि जात-पाँत टूट जानी चाहिये। ऐसा होने पर क्या हिन्दुत्व क़ायम रहेगा? आप हिन्दुत्व को ईसाई या इस्लाम जैसे आगे बढ़नेवाले धर्मों के साथ क्यों मिलाते हैं?

ज०—अगर हिन्दुत्व को जीना है तो जात-पाँत, वह जिस रूप में समझी जाती है, जानी ही चाहिये। मेरा विश्वास नहीं है कि ईसाई धर्म या इस्लाम आगे बढ़नेवाले हैं और हिन्दू धर्म स्थिर या पीछे जानेवाला है। सचमुच मुझे किसी धर्म में कोई तैशुदा तरक्क़ी दिखलाई नहीं पड़ती। अगर दुनिया के धर्म तरक्क़ी करनेवाले होते, तो वह आज जो क़साईख़ाना बन गई है सो न बनती। वर्ण के बटवारे में बड़ी चार जातों के लिए फ़र्ज़ अदा करने की जगह थी। सब धर्मों में यह बात सच थी, नाम भले ही वर्ण के अलावा कोई दूसरा रहा हो। अगर मुस्लिम मौलवी और ईसाई पादरी, रुपये के लिये नहीं बल्कि इसलिए कि उसमें

समझाने की देन है, अपने लोगों को उनका सच्चा फ़र्ज़ सिखाता हो तो वह ब्राह्मण नहीं तो क्या है ? यही बात दूसरे हिस्सों या वर्णों के बारे में भी थी।

स०—चूँकि आप जात-पाँत को तोड़ने के हामी हैं, इसलिए क्या हम यह समझें कि आप एक-दूसरी जात में शादियों के भी हामी हैं ? आजकल बहुत से धन्धे खास खास जातों के इज़ारे हो गये हैं। क्या यह भी तोड़ा नहीं जाना चाहिये ?

ज०—मैं ज़रूर एक-दूसरी जातों के बीच शादियों का हामी हूँ। जब सब जात-पाँत टूट जायँगी, तब यह सवाल रहेगा ही नहीं। जब यह सुख देनेवाली घटना हो जायगी, तब धन्धों का इज़ारा भी जाता रहेगा।

स०—अगर ईश्वर या ख़ुदा एक ही है तो क्या धर्म या मज़हब भी एक ही नहीं होना चाहिये ?

ज०—यह एक अजीब सवाल है। जिस तरह पेड़ में लाखों पत्तियाँ होती हैं उसी तरह ईश्वर या ख़ुदा के एक होने पर भी दुनिया में उतने ही धर्म हैं जितने कि आदमी और औरतें, गो कि इन सबका सहारा वही एक ईश्वर है। वे यह सीधी-सादी सचाई पहचान नहीं सकते, क्योंकि वे अलग अलग पैग़म्बरों को माननेवाले हैं और उतने ही धर्मों का दावा करते हैं जितने कि पैग़म्बर हैं। मैं ख़ुद अपने को हिन्दू मानता हूँ, मगर मैं जानता हूँ कि सचमुच मैं ठीक उसी तरह पूजा नहीं करता जिस तरह कि दूसरे करते हैं।

२१—२—'४७

चाँदपुर के पास के गाँवों से बहुत बड़ी संख्या में दर्शक इकट्ठे हुए थे। कमलापुर से चाँदपुर ही सब से पास का गाँव है। गांधीजी ने कहा—"आसपास के गाँवों से आने के कारण मैं आपको बधाई देता हूँ। फिर भी मुझे हमदर्दी है कि आपको धूप में चलना पड़ा। मुझे आशा है कि आप हिन्दुस्तान की धूप से डरते न होंगे। शायद यह ईश्वर की

सबसे बड़ी देन है। हिन्दुस्तान खुशक़िस्मत है कि उसे साल के ज्यादातर हिस्से में साफ़, नीला आसमान मयस्सर रहता है।"

"जब हिन्दुस्तान के अज़ीम व आज़म सपूत हरदयाल नाग ज़िन्दा थे, तब मैं एक से ज्यादा बार चाँदपुर गया था। उस वक्त मैं उनका मेहमान था। इस लिए मैं जानता हूँ कि चाँदपुर क्या अहमियत रखता है। मुझे खुशी है कि चाँदपुर ने पनाहगीरों की सार-सँभाल करने में अपना हिस्सा अदा किया है। मगर मुझे सफ़ाई और आरोग्य के नियमों की लापरवाही देखकर अफ़सोस है। अगर कड़ाई के साथ इन नियमों का पालन किया जाय तो आप को हमेशा प्लेग और गंदगी से पैदा होनेवाली दूसरी बीमारियों के डर में नहीं रहना पड़ेगा।"

इसके बाद उन्होंने कहा—"आप को अपने मन में अपने मुसलमान पड़ोसियों के ख़िलाफ़ बुराई नहीं रखनी चाहिये। हिन्दुओं और मुसलमानों को एक-दूसरे के साथ शान्ति से रहना चाहिये। मेरा ख़याल है कि अगर सिर्फ़ हिन्दुओं के मन में मुसलमानों के ख़िलाफ़ या सिर्फ़ मुसलमानों के मन में हिन्दुओं के ख़िलाफ़ बुराई न रही तो भी झगड़े कम हो जायँगे। मगर दोनों के दिल में एक-दूसरे के ख़िलाफ़ या बुराई रहने से झगड़े ज़रूर होंगे। उपनिषदों में एक ज़बरदस्त मंत्र है कि आदमी जैसा सोचता है वैसा बन जाता है। ज़िन्दगी के हर पहलू में यह कितना सच है। बुरे विचार से ख़बरदार रहना चाहिये।"

इसके बाद उन्होंने सवालों के जवाब दिये। पहला सवाल था।

स०—आप एक-दूसरी जात में शादी की हिमायत करते हैं। क्या आप दूसरे दूसरे धर्मवाले हिन्दुस्तानियों के बीच भी शादियों के तरफ़दार हैं? क्या उन्हें अपने-आप को कोई खास धर्म न माननेवाले ज़ाहिर कर देना चाहिये, या अपने पुराने मज़हबी रस्म-रिवाज़ पालते हुए भी शादी कर लेना चाहिये? अगर ऐसा हो तो शादी किस तरीक़े से की जाय? वह "सिविल" रिवाज से हो या धार्मिक?

क्या आप मानते हैं कि धर्म पूरी तरह से जाती चीज़ है ?

ज०—मैं मञ्ज़ूर करता हूँ कि हमेशा मेरा यह ख़याल नहीं रहा। मगर अब से बहुत पहले मैं इस नतीजे पर पहुँच गया था कि, जब भी हो, दूसरे दूसरे धर्म वालों के बीच शादियों का होना अच्छी बात होगी। शर्त्त यह है कि इस तरह का रिश्ता वासना (नापाक ख़्वाहिश) का नतीजा न हो। ऐसी शादी, मेरे ख़याल से, शादी होती ही नहीं। यह तो नाजायज़ भोग-विलास या ऐश है। मैं शादी को एक पाक संस्था या दस्तूर मानता हूँ। इस लिए दोनों के दिल में दोस्ती और एक दूसरे के धर्म के लिये इज्ज़त होनी चाहिये। इसमें धर्म बदलने का सवाल नहीं उठता, इस लिए दोनों में से किसी भी धर्म का पंडित या मौलवी शादी करा सकता है। यह सुख देने वाली घटना तब घट सकती है जब क़ौमें आपस की दुश्मनी निकाल दें और दुनिया भर के धर्मों की इज्ज़त करने लगें।

स०—क्या धार्मिक तालीम सरकार के मंजूर किये हुए स्कूली पाठ-क्रम या निसाब का हिस्सा होनी चाहिये ? क्या आप मज़हबी तालीम के सुभीते के ख़याल से अलग अलग धर्म के विद्यार्थियों के लिए अलग-अलग स्कूलों के पक्षपाती हैं ? या, मज़हबी शिक्षा ख़ानगी संस्थाओं के हाथ में छोड़ दी जानी चाहिये ? अगर हाँ तो, क्या सरकार को ऐसी ख़ानगी संस्थाओं की मदद करनी चाहिये ?

ज०—मैं, अगर सारी क़ौम का एक ही धर्म हो तो भी, राजकीय या सरकारी धर्म पर विश्वास नहीं करता। शायद सरकारी दस्तंदाज़ी हमेशा ही नागवार होगी। धर्म ख़ालिस तौर से ज़ाती मामला है। दरअसल जितने मन हैं उतने ही धर्म हैं। परमात्मा की कल्पना हर मन में दूसरे से जुदा होती है।

मैं धार्मिक संस्थाओं को थोड़ी या पूरी सरकारी मदद मिलने के भी ख़िलाफ़ हूँ। यह इसलिए कि जो संस्था या जमात अपनी मज़हबी

तालीम के खर्च का इन्तज़ाम नहीं कर सकती, वह सच्चे मज़हब को नहीं जानती। इसका यह मतलब नहीं कि सरकारी स्कूलों में चाल-चलन की तालीम नहीं दी जानी चाहिये। चाल-चलन के उसूल सब धर्मों में एक से ही हैं।

२२—२—'४७

गांधीजी ने शुरू में कहा—"बलूचिस्तान के एक दोस्त के पास से मेरे पास एक छपा हुआ काग़ज़ आया है। उसमें, मैं समझता हूँ, पैग़ंबर साहब के हदीस और उस्तादों के क़ौल दिये हुये हैं। पूरा चुनाव बहुत अच्छा है। मगर मेरा ध्यान हज़रत मोहम्मद साहब के हदीसों में इसकी ओर ज्यादा खिंचाः—

फ़रिश्ते जो कुछ पूछेंगे—

जब ख़ुदा ने ज़मीन बनाई तो वह इधर-उधर हिलती थी, जब तक कि उसने उसे मुस्तक़िल करने के लिए उस पर पहाड़ नहीं रख दिये। तब फ़रिश्तों ने पूछा—ऐ ख़ुदा, क्या तेरी खिलक़त में इन पहाड़ों से भी ज्यादा ताक़तवर कोई चीजें हैं? और ख़ुदा ने जवाब दिया—लोहा इन पहाड़ों से भी ज्यादा ताक़तवर है, क्योंकि वह इनको फोड़ डालता है।

और क्या तेरी खिलक़त में लोहे से भी ताक़तवर कुछ है?

हाँ, आग लोहे से ज्यादा ताक़तवर है, क्योंकि वह उसे गला देती है।

क्या आग से भी ताक़तवर कुछ है?

हाँ, पानी, क्योंकि वह आग को बुझा देता है।

क्या पानी से भी ताक़तवर कुछ है?

हाँ, हवा, क्योंकि वह पानी को चला देती है।

ऐ हमारे मालिक, क्या हवा से भी ताक़तवर कोई चीज़ है?

हाँ, ख़ैरात करनेवाला भला आदमी। अगर वह दाहिने हाथ से

देता है और बायें हाथ से उसे छिपा लेता है तो वह सब चीज़ों को जीत सकता है। हर अच्छा काम ख़ैरात है। अपने भाई के सामने तुम्हारा मुसकराना, किसी भटके हुए को तुम्हारा राह बता देना, प्यासे को तुम्हारा पानी दे देना ख़ैरात है। अब से आदमी की सच्ची दौलत उसकी अपने साथी के साथ की हुई भलाई है। जब वह मरेगा तो लोग पूछेंगे—वह अपने पीछे कौनसी दौलत छोड़ गया है? मगर फ़रिश्ते पूछेंगे—उसने कौन से अच्छे काम आगे भेजे हैं?

फिर गांधीजी ने नीचे के सवालों के जवाब दिये—

स०—मन्दिरों में जा सकने पर ज़ोर क्यों दिया जाता है? हम यह समझ कर पूछ रहे हैं कि उग्र होनेपर उस में सत्याग्रह की गुंजाइश है। बिना जात-पाँत की दावतों की वक़त महदूद है। क्योंकि, जो लोग उन में शामिल होते हैं, वे अपने घरों और समाजी कामों में छुआछूत को नहीं छोड़ते। कांग्रेस के आदमियों या दूसरे तरक्क़ी-याफ्ता लोगों के ज़रिये संगठित हुई इन दावतों को वे खास मौक़ों की बातें मानते हैं, जब कि जात-पाँत के नियम थोड़े वक्त के लिये रोक दिये जाते हैं। इनकी कुछ कुछ बराबरी जगन्नाथपुरी जानेपर बिना जात-पाँत का ख्याल किये जगन्नाथ का भात खा लेने से की जा सकती है। छुआछूत का विरोध अभी इतने गहरे नहीं पहुँचा कि वह लोगों की मामूली समाजी जिन्दगी पर असर करे। निजी घरों के अन्दर भेद भावको तोड़ने के लिये क्या किया जा सकता है? मन्दिर-प्रवेश के बारे में भी एक सवाल है। क्या आप समझते हैं कि आज़ाद हिन्दुस्तान में आम जनता की सेवा के लिये बिना पुरानी जातों का ख्याल किये पुरोहित बना लिये जाया करेंगे?

ज०—बंगाल के इस हिस्सेमें, जहाँ नामशूद्रों की सब से ज़्यादा तादाद है, यह सवाल मौज़ूँ है। मैं इस सवाल का दोहरा इस्तक़बाल करता हूँ, क्योंकि मैं जात-पाँत पर विश्वास न करने के कारण हिन्दू सीढ़ी के सब से निचले पाँवदान पर बैठा हूँ। उस सब से निचले पाँवदान

पर बैठने के लिये मैं सबको न्योता देता हूँ। तब जैसे प्रश्न मुझ से पूछे गये हैं वैसों के लिये कोई मौक़े न रहेंगे। इसी बीच, इन का जवाब तो मुझे देना ही होगा। मैं इस दावे की पूरी ताईद करता हूँ कि जब जात पाँत के कारण किसी के खिलाफ़ किसी क़िस्म की पाबंदी न रहेगी तब छुआछूत भी पूरी तरह नाश हो जायगी। सिर्फ़ गंदेपन और चाल-चलन खो देने वग़ैरह पर सब जगह पाबंदी रहेगी। मगर मैं इस विश्वास पर क़ायम हूँ कि छुआछूत को मिटाने के काम में मंदिरों में जा सकना पहली जगह रखता है और मैं यह दावा भी करता हूँ कि सब के मिलेजुले आम भोजोंके बाद, जैसा कि हो रहा है, छुआछूत के शैतान पर आखिरी जीत ज़रूर होगी। मैं आगे की बात जताता हूँ कि अगर छुआछूत को नाश न किया गया तो हिन्दू धर्म उसी तरह मिट जायगा जिस तरह कि, अगर ब्रिटिश साम्राज्य पूरी तरह ख़त्म न हो गया तो, ब्रिटिश जातिका नामो-निशान मिट जायगा। यह हमारे देखते देखते हो भी रहा है।

स०—आपने १९४१ में धनकी बराबरी के बारे में लिखा था। क्या आपका यह खयाल है कि सब लोगों को, जो समाज में उपयोगी और ज़रूरी काम करते हैं—चाहे वे किसान हों या भंगी, इंजीनियर हों या हिसाबनवीस, डाक्टर हों या उस्ताद—बराबर मिहनताना पाने का नैतिक हक़ है? बेशक यह बात सवाल की तहमें मान ली गई है कि तालीम के और दूसरे खर्च सरकार बरदाश्त करेगी। हमारा सवाल यह है कि क्या सब लोगों को अपनी निजी ज़रूरियात के लिये बराबर मिहनताना नहीं मिलना चाहिये? क्या आप नहीं मानते कि अगर हम इस बराबरी की कोशिश करें तो यह दूसरे सब तरीक़ों से जल्दी छुआछूतको उखाड़ फेकेगी?

ज०—मुझे कोई शक नहीं कि अगर हिन्दुस्तान को आज़ादी की एक नमूनेदार जिंदगी बितानी है, जो दुनिया के लिये रश्ककी बायस हो, तो सब भंगियों, डाक्टरों, वकीलों, उस्तादों, व्यापारियों और दूसरों को, ईमान-दारीसे दिनभर काम करने के बदले, बराबर मेहनताना मिलना चाहिये।

भले ही हिन्दुस्तानी समाज उस मंज़िले-मक़सूद तक कभी न पहुँचे। मगर, हिन्दुस्तान को एक सुखी देश बनना है तो, हर हिन्दुस्तानी का फ़र्ज़ है कि वह किसी दूसरे की ओर नहीं, बल्कि उसी मंज़िल की ओर अपना क़दम बढ़ाये।

गांधीजी की पैदल-यात्रा की डायरी

२३-२-'४७

गांधीजी को नीचे लिखे दो सवाल मिले थे जिनका जवाब, मौन शुरू होने के कारण, उन्होंने लिख कर दिया है।

स०—नामशूद्र लड़कियाँ मामूली तौर पर १२ या १३ बरस की उम्र में ब्याह दी जाती हैं। पहले मामूली तौर पर उनकी उम्र ८ या ९ बरस की ही होती थी। दूल्हे को कन्या के लिये १५० रु० का दहेज देना पड़ता है। दोनों में औसतन १२ से १५ वर्ष का फ़र्क़ होता है। इसका नतीजा यह हुआ है कि नामशूद्र समाज में बेवाओं की संखया बहुत है। समाज के एक हिस्से में बेवा की शादी का रिवाज जारी था। मगर दूसरे हिस्से की, जो ऊँचा समझा जाता है, नक़ल करके वे लोग इस रिवाज को छोड़ रहे हैं। बच्चों और बेवाओं की शादी के बारे में आप की क्या राय है?

ज०—मेरी राय तय है। पहले तो बच्ची बेवाओं की संभावना होनी ही न चाहिये। मैं बच्चों की शादियों के खिलाफ़ हूँ। यह एक बुरा रिवाज है जो शायद, कमनसीबी से, नामशूद्रों ने ऊँची कहलाने वाली जातों से ले लिया है।

मैं दहेज के रिवाज के भी खिलाफ़ हूँ। यह बच्चियों को बेचने के सिवा और कुछ नहीं है। नामशूद्रों में भी जातें हों, यह दुःख की बात

है। मैं ज़ोरों से उन्हें सलाह दूँगा कि वे अपने बीच से जात-पाँत के फ़र्क़ को उड़ा दें। इसमें वे मेरी अक्सर ज़ाहिर की हुई यह राय याद रखें कि सब जात-पाँत के भेद तोड़ दियें जाने चाहिये और सिर्फ़ एक ही जात होनी चाहिये, जो भंगी हो। और सब हिन्दुओं को भंगी कहलाने का घमंड होना चाहिये, दूसरा कुछ नहीं। यह नामशूद्रों के बारे में भी लागू है।

बच्चों की शादियाँ बन्द हो जाने के बाद अगर छोटी उम्र की कोई बेवायें हुईं तो वे बहुत कम होंगी। आम नियम तो मैं यह मानता हूँ कि ज़िन्दगी भर में एक मर्द की एक ही औरत और एक औरत का एक ही मर्द होना चाहिये। ज़बरन बेवापन जारी रखने वाली नामधारी जातों के रिवाजों का औरतों को आदी बना दिया गया है। मर्दों के बारे में इसका उलटा नियम रहा। यह शर्म की बात है। मगर जब तक समाज इस रहम के लायक़ हालत में है, तब तक सब छोटी उम्र की बेवाओं की शादी होनी चाहिये। मैं स्त्री और पुरुषों की बराबरी पर विश्वास करता हूँ, इसलिये मैं स्त्रियों के लिये सिर्फ़ उन्हीं अधिकारों की बात सोच सकता हूँ जो पुरुषों को हैं।

स०—आप कहते हैं कि मैं अलग-अलग धर्मों के बीच शादियों का हिमायती हूँ। मगर इसके साथ ही आप यह भी कहते हैं कि हर एक को अपना-अपना धर्म क़ायम रखना चाहिये। और, इसलिये, आपने कहा है कि मैं "सिविल" शादियाँ भी बर्दाश्त कर सकता हूँ। क्या ऐसे किन्हीं लोगों की मिसालें मौजूद हैं जिन्होंने दूसरे धर्म में शादी करके जिंदगी भर अपना निजी धर्म क़ायम रखा हो? और क्या "सिविल" शादी का तरीक़ा धर्म का इनकार नहीं है और क्या वह धर्म के ढीलेपन की ओर नहीं लेजाता?

ज०—प्रश्न मौज़ूँ है। मुझे कोई ऐसी मिसालें याद नहीं हैं जिनमें दोनों बाज़ुओं ने ज़िंदगी के अख़ीर तक अपने-अपने धर्म का पालन किया हो, क्योंकि जिन दोस्तों को मैं जानता हूँ वे अब तक मरे नहीं हैं।

फिर भी कुछ ऐसे मर्द और औरतें हैं जो बिना किसी कमी के अपने अलग धर्मों का पालन करते हैं और मैं उनको बारीकी से देख रहा हूँ। मगर मैं तो कहूँगा कि आपको बीते हुये ज़माने की मिसालें खोजने के लिये रुकना नहीं चाहिये। आपको नई मिसालें बनाना चाहिये, जिससे कि डरने वाले लोग अपना डर छोड़ दें।

"सिविल" शादियों पर मेरा विश्वास नहीं है। मगर सिर्फ़ सुधार के लिये, बहुत ज़रूरी सुधार के नाते, मैं उस तरीक़े का स्वागत करता हूँ।

२४–२–'४७

यात्रा के दूसरे हिस्से के आख़िरी दौरान में, उस के आनन्द के साथ ख़त्म होने पर, गांधीजी ने परमात्माका शुक्र माना। उन्होंने ठक्कर बापा की इस ज़ोरदार इच्छा का ज़िक्र किया कि हाइमचर को भी यात्रा के गाँवों में शामिल कर लिया जाय। बापा को उन्होंने हरिजनों का सब से बड़ा मज़हबी पेशवा और सेवक कहकर पुकारा। उन्होंने इस बातका भी ज़िक्र किया कि किस तरह तकलीफ़ में पड़े हुये गाँवों में कार्यकर्त्ताओं को भेजना शुरू हुआ और किस तरह बापा ने सहज बुद्धि से हाइमचर को अपनी ख़िदमत का इलाक़ा बना लिया।

बाद को उन्होंने तार और दूसरे ज़रियों से आये हुये उन सँदेशों का ज़िक्र किया जिन में उनसे मि० एटली के बयान पर राय ज़ाहिर करने की इल्तजा की गई थी। उन्होंने कहा—"अगर दूसरी संस्थाओं को छोड़ भी दिया जाय तो कांग्रेस और लीग ज़िम्मेदार राय देने के लिये मौजूद हैं। फिर भी इतना तो मैं कह सकता हूँ कि उस बयान से तमाम पार्टियों पर ज़िम्मेदारी आ गई है कि वे जो कुछ सब से अच्छा समझें सो करें। बयान में यह ज़ाहिर कर दिया गया है कि ब्रिटिश राज १९४८ के जूनमें या उस के पहले ख़त्म हो जायगा। अब पार्टियाँ चाहें हालत को बनायें या बिगाड़ दें। उनकी मिली हुई इच्छा को दुनिया में कोई उलट नहीं सकता। जहाँ तक मेरा ताल्लुक़ है, मेरी ज़ोरदार राय है कि अगर

हिन्दू और मुसलमान अपना भेदभाव मिटा कर बिना बाहरी दबाव के एक हो गये, तो न सिर्फ़ उन की सियासी हालत सुधर जायगी, बल्कि वे सारे हिन्दुस्तान और दुनिया पर अपना असर डाल सकेंगे।"

सभा में ज़्यादातर नामशूद्र हाज़िर थे। गांधीजी सहज ही उन के सवालों की ओर झुक गये। उन्होंने कहा—"मैं चेतावनी देता हूँ कि अपने आप को गिरे हुये या अछूत मत समझो। असल में ऊँची कहलाने वाली जातें गुनहगार हैं। आपकी गिरी हुई हालत की ज़िम्मेदारी उनपर है। अगर आपने यह सचाई महसूस कर ली तो आप उन लोगों के बुरे रीत-रस्म और बुरी आदतों की नक़ल कभी न करेंगे।

"मुझे यह सुनकर दुःख हुआ है कि आप लोगों में बच्चों के ब्याह कर दिये जाते हैं और ऊंची जातों की देखादेखी छोटी छोटी उमर की बेवाओं को फिर से ब्याह करने से रोका जाता है। मैंने सुना है कि इसके नतीजों के तौर पर बदचलनी से पैदा होनेवाली बीमारियाँ आप लोगों में फैल गई हैं। आप की भलाई क़ानून-सभाओं या किन्हीं बाहरी ज़रियों से न होगी। वह आप की ही कोशिशों पर निर्भर है। स्वर्गीय मालवीय जी कहा करते थे कि भगवान के बच्चे ईमानदारी के साथ चाहे एक कौड़ी ही कमायें, मगर उन्हें उस से ही गुज़र करके संतोष मानना चाहिये। यह आप को हमेशा याद रखना चाहिये इस से आप को सुख मिलेगा और छुआछूत मिट जायगी। जिन्हें ऊँची जातों का माना जाता है, वे आपके खिलाफ़ किये हुये कामों के लिये शर्मिंदा होंगे।"

जो बर्बादी हुई है उसका ज़िक्र बापा ने गांधीजी से किया था। गांधीजी ने कहा—"मुझे दुःख है, पर मैं उस के लिये आँसू नहीं बहाऊँगा और न बर्बाद करने वाले के खिलाफ़ बुरा भाव रखूँगा। आप को भी अपनी नुक़सानों पर रोते नहीं रहना चाहिये। आप को कड़ा काम करने की आदत है, और होनी चाहिये। आप सरकार से इन्साफ़ करने के लिये कह सकते हैं, और वह भी समय पर। मगर वह मदद न मिले तो

आप को हारकर बैठ न जाना होगा। अपने हाथ-पैर पर भरोसा करना चाहिये। उन के बलपर अपनी ज़िन्दगी फिर से जमा लेनी चाहिये। खुदा हमेशा उन की मदद करता है जो खुद अपनी मदद करते हैं। आपका भरोसा ज़िन्दा ईश्वर या हमेशा ग़लती करने वाली जनता पर होना चाहिये।

२५-२-'४७

गांधीजी ने प्रार्थना के बाद अपने भाषण में कहा—"मुझे राहत-कमिश्नर नूरन्नबी चौधरी साहब ने एक मीटिंग में शामिल होने का न्योता दिया है। लेकिन आप मेरी सलाह के मुताबिक़ काम कीजिये। इस बारे में दूसरे क्या करेंगे, इसका इन्तज़ार मत कीजिये। मैं दुनिया में खुदा का राज क़ायम करना चाहता हूँ। लेकिन ऐसा करने के लिये हमें दूसरों का इन्तज़ार नहीं करना चाहिये।"

इस के बाद गांधीजी ने पूछे गये सवालों का जवाब दिया।

स०—क्या आपका यह ख़याल नहीं है कि परदे की कड़ी पाबन्दी से औरतों की इखलाकी हालत सुधरेगी?

ज०—कुछ मुसलमान टीका करने वालों ने मुझे चेतावनी दी है कि मै परदे के बारे में कुछ न कहूँ। इसलिये इस मामले में कुछ कहने में मुझे हिचकिचाहट मालूम होती है। फिर भी सभा में आई हुई बहुतसी हिन्दू बहनों को परदा करते देखकर मैं इस बारे में कुछ कहने की हिम्मत करता हूँ। मलाया की बहुतसी मुस्लिम बहनें, जिन में से कई मेरी दोस्त हैं, परदा नहीं करतीं। मै हिन्दुस्तान की ऐसी कई मशहूर मुस्लिम बहनों को जानता हूँ, जो परदा नहीं करतीं। सच्चा परदा तो दिलका होता है। अगर कोई औरत परदे के भीतर से किसी मर्द को देखती है और उसका ध्यान करती है, तो वह परदे के पीछे रही भावना को ठुकराती है। जो औरत परदे की भावना को अपना लेती है, वही पैग़म्बर साहब की नसीहत पर सच्चे मानों में अमल करती है।

स०—जिन लोगों का सारा व्योपार चौपट हो गया है, उन के लिये आप की यह सलाह है कि उन्हें खुद होकर मज़दूर बन जाना चाहिये। तब तालीम, व्योपार और जिसी तरह की दूसरी बातों पर कौन ध्यान देगा? अगर आप इस तरह मेहनत के बँटवारे को खतम कर देंगे, तो इस से तहज़ीब और सभ्यता को नुक़सान नहीं पहुँचेगा?

ज०—सवाल पूछनेवाले ने मेरे मतलब को नहीं समझा है। अगर कोई आदमी अपना पहला व्योपार-धन्धा नहीं चला सकता तो उसे लाज़िमी तौरपर पाखाने साफ़ करने या पत्थर फोड़ने जैसा कोई-न-कोई जिस्मानी काम करना ही चाहिये। जिसमें उसकी पसन्द या नापसन्द का कोई सवाल नहीं मेहमत या काम के बँटवारे में मेरा विश्वास है। लेकिन मैं इस बातपर ज़ोर देता हूँ कि सयकी मज़दूरी बराबर हो। एक वकील, डॉक्टर या मास्टर को भंगी से ज़्यादा मज़दूरी पानेका कोई हक़ नहीं। ऐसा होगा, तभी कामका बँटवारा राष्ट्र या दुनिया को ऊपर उठायेगा। सच्ची तहज़ीब या सच्चे सुखका इससे बेहतरीन कोई रास्ता नहीं।

किसी उसूल की 'स्पिरिट' इनसान को जीवन देती है, लेकिन उसके शब्द उसे खतम कर देते हैं। हाथी का सिर कटा हुआ 'गणपति' राक्षस की तरह है, लेकिन 'ओम्' के नुमाइन्दे के नाते वह ऊँचा उठाने वाला प्रतीक (निशानी) है। दस सिरवाला रावण कहानी-क़िस्से का बेवक़ूफ़ था, लेकिन अगर उसका मतलब ऐसे आदमी से हो जो बेअक़ल था और जोश में आकर कुछ भी कर बैठता था, तो वह सचमुच कई सिर वाला राक्षस था।

स०—सवर्ण हिन्दू अछूतों के हितों का कैसे खयाल रख सकते हैं? उन के हाथों इतनी मुसीबतें सहने वाली जातियों के दर्दको वे क्या समझ सकते हैं? तब क्या यह बेहतर नहीं होगा कि अछूतों के हित अछूतों के ही हवाले कर दिये जायँ?

ज०—मेरी रायमें सवर्ण हिन्दुओं का नामधारी अछूतों की तरफ़ एक

पवित्र फ़र्ज़ है। वह यह है कि उन्हें नाम और काम दोनों से भंगी बन जाना चाहिये। जब यह हो जायगा, अछूत देखते-देखते ऊपर उठ जायँगे और हिन्दूधर्म दुनिया के लिये एक क़ीमती विरासत छोड़ जायगा। ऐसा होने पर पाखाने साफ़ करने का तरीक़ा बिलकुल बदल जायगा। इंग्लैण्ड में सच्चे 'भंगी' ही मशहूर इंजीनियर और सफ़ाई के उसूलों के जानकार हुये हैं। लेकिन हिन्दुस्तान में यह तब तक नहीं हो सकता, जब तक यहाँ के लोग आलसी और निकम्मे बने रहेंगे।

२६–२–'४७

स०—जब मरक़ज़ में सारी चीज़ें गड़बड़ा रही हों, तब आम लोग फिरसे एका क़ायम करने के लिये क्या कर सकते हैं?

ज०—सायन्सका एक नियम यह बताता है कि दो ताक़तें साथ-साथ काम करती हैं—केन्द्र की ओर बढ़नेवाली और केन्द्र को छोड़ने वाली। यही नियम मैं ज़िन्दगी पर भी लागू करना चाहता हूँ। इसलिये हुकूमत का केन्द्र हम सबको अपनी ओर खींचता है और अच्छे शासन में हम केन्द्र की ओर बढ़ने वाली ताक़त के साथ खिंचे चले जाते हैं। यही हाल केन्द्र को छोड़ने वाली ताक़त का है, जिस के मुताबिक़ हाइमचर गाँव के रहने वाले हम सब केन्द्र को अपनी ओर खींचते हैं। इस तरह जहाँ ये ताक़तें बराबर काम करती हैं, वहाँ केन्द्रमें और उस के आसपास अच्छे बन्दोबस्त वाली संगठित सरकार होती है। जब केन्द्र में गड़बड़ी हो रही है, तब ७ लाख गाँवों पर राज करने का सवाल ही नहीं रह जाता। दूसरी तरफ़ अगर गाँव वाले अक़लमन्दी से मरक़ज़को अपनी नामधारी ऊँची राजनीति की देखभाल करने देंगे, तो वे पूरे-पूरे मेल-जोल से रह सकेंगे।

स०—जो आदमी अपनी जाति के लिए स्वार्थ की क़ुरबानी कर देता है, वह उस हद तक तो बेग़रज़ है ही। ऐसे आदमी के दिलपर यह असर कैसे डाला जाय कि वह देश की भलाई के लिये जाति की भलाई छोड़ दे?

ज०—जिस आदमी की क़ुरबानी की भावना अपनी जाति से आगे नहीं बढ़ती, वह खुद स्वार्थी है और अपनी जाति को भी स्वार्थी बनाता है। मेरी रायमें स्वार्थ की क़ुरबानी का लाज़िमी नतीजा यह है कि आदमी जाति के लिये क़ुरबानी करे, जाति ज़िले के लिये, ज़िला सूबे के लिये, सूबा देशके लिये और देश सारी दुनिया के लिये अपने स्वार्थ को छोड़ दे। समुद्र से अलग की हुई पानी की बूँद और किसी को फ़ायदा पहुँचाये सूख जाती है। अगर वह समुद्र का हिस्सा बनकर रहती है, तो अपनी छाती पर बड़े भारी जहाज़ी बेड़े को ले जानेका जस कमाती है।

स०—आज़ाद हिन्दुस्तान में किसका हित सब से बढ़कर रहेगा? अगर पड़ोस की स्टेट को किसी चीज़ की ज़रूरत हो, तो आज़ाद हिन्दुस्तान क्या करे?

ज०—इस तीसरे सवाल का जवाब दूसरे में आ गया है। अगर हिन्दुस्तान सच्चे मानों में आज़ाद होगा, तो वह अपने मुसीबत के मारे पड़ोसी देशों को ज़रूर मदद देगा। मिसाल के तौर पर अफ़गानिस्तान, लंका और बर्मा को ही लीजिये। यही नियम इन तीनों देशों के पड़ोसियों पर भी लागू होता है। और, आखिर में इन तीनों देशों के पड़ोसी हिन्दुस्तान के भी पड़ोसी हो जाते हैं। इस तरह, अगर किसी आदमी की क़ुरबानी जीती जागती क़ुरबानी है, तो उस में सारी मनुष्य जाति समा जाती है।

२७–२–'४७

आज गांधीजी ने शाम की प्रार्थना उस प्रार्थना-घरमें की जो दंगे के दिनों में बरबाद कर दिया गया था और सरकार द्वारा फिर बनवा दिया गया था। गांधीजी के हाथ में प्रार्थना-घरकी कहानी कहने वाला एक काग़ज़ था। उस में यह बताया गया था कि प्रार्थना-घरका मन्दिर सिर्फ़ इसलिये बरबादी से बच गया कि उस के सूझ-बूझ वाले पुजारी ने मूर्ति को हटाकर एक सलामती की जगह रख दिया था। उस में यह भी कहा

गया था कि प्रार्थना-घर को फिर से बनवाने में कुछ पुराने और जंग खाये हुये टीन इस्तेमाल किये गये हैं। लोगों ने और गांधीजी ने यह उम्मीद ज़ाहिर की कि जंग खाये हुये टीनों पर अच्छी तरह रोगन चढ़ा दिया जायगा ताकि वे ज़्यादा ख़राब न होने पायें।

स०—क्या आदमी अपने बिलकुल पास के पड़ोसियों की सेवा करते हुये भी सारी मनुष्य जाति की सेवा कर सकता है? 'स्वदेशी' के मानी क्या हैं?

ज०—मैं इस सवाल का जवाब कल शाम को दे चुका हूँ। मैं इस सत्य में विश्वास करता हूँ कि एक आदमी एक ही वक्त में अपने पड़ोसियों और मनुष्य-जाति की सेवा कर सकता है। लेकिन इस की शर्त्त यह है कि पड़ोसियों की सेवा किसी स्वार्थ से न की जाय, यानी उस से किसी दूसरे इनसान को चूसा न जाय। तभी हमारे पड़ोसी सेवा की भावना को पहचानेंगे। वे यह भी जान लेंगे कि उन से यह आशा रखी जायगी कि वे भी अपने पड़ो सियों की सेवा करें। इस तरह सोचने पर सेवा की यह भावना मज़बूत बनकर सारी दुनिया में फैल जायगी।

इस से यह नतीजा निकलता है कि 'स्वदेशी' वह भावना है जो इनसान को, दूसरे सब लोगों को छोड़कर, सिर्फ़ अपने बिलकुल पास के पड़ोसी की सेवा करने की प्रेरणा देती है। जैसा कि मैं ऊपर बता चुका हूँ, इस की शर्त्त यही है कि जिस पड़ोसी की इस तरह सेवा की जाय, वह बदले में अपने पड़ोसी की सेवा करे। इस मानी में 'स्वदेशी' की भावना किसी को भी अपने दायरे से अलग नहीं रखती। वह इनसान की सेवा करने की ताक़त की वैज्ञानिक (सायंसी) मर्यादा भर मानती है।

स०—सरकार हिन्दुस्तान के कच्चे मालका पूरा-पूरा फ़ायदा उठाने के लिये मुल्क में उद्योग-धन्धे खोलने की योजनायें बना रही है। लेकिन वह उन लाखों-करोड़ों आदमियों को रोज़ी देने के बारे में कोई योजना नहीं बनाती, जो निकम्मे और आलसी बनकर बरबाद हो रहे हैं। क्या ऐसी योजनायें 'स्वदेशी' मानी जायँगी?

ज०—यह सवाल बड़े अच्छे ढंग से पूछा गया है। मैं ठीक तरह नहीं जानता कि सरकार की योजना क्या है। लेकिन मैं दिल से इस बातकी ताईद करता हूँ कि मुल्क के कच्चे मालका इस्तेमाल करने वाली और ज्यादा ताक़तवर इनसानों की परवाह न करने वाली कोई भी योजना न तो मुल्कमें समतोल क़ायम रख सकती है और न सब इनसानों को बराबरीका दर्जा दे सकती है।

अमेरिका दुनिया में सबसे ज्यादा उद्योग-धन्धों वाला देश है, फिर भी वह ग़रीबी और दूसरी बुराइयोंको नहीं मिटा सका है। इसका कारण यह है कि अमेरिका ने काम करने लायक़ आम लोगों की परवाह नहीं की और थोड़े से लोगों के हाथ में सत्ता दे दी, जिन्होंने बहुतों को चूसकर करोड़ों-अरबों की दौलत इकट्ठी कर ली। नतीजा यह हुआ कि अमेरिका के बड़े-बड़े उद्योग-धन्धे वहाँ के ग़रीबों और बाक़ी की दुनिया के लिये खतरा बन गये हैं।

अगर हिन्दुस्तान को इस बरबादी से बचना है, तो उसे अमेरिका और दूसरे पच्छिमी देशों की उम्दा बातें ले लेनी चाहियें और उसकी लुभावनी मगर बरबाद करने वाली दौलत की निति छोड़ देनी चाहिये। इसलिये, सच्ची योजना तो यह होगी कि हिन्दुस्तान की समूची इनसानी ताक़तका अच्छे-से-अच्छा फ़ायदा उठाया जाय, और कच्चा माल विदेशों को भेजकर उसके बदले अनाप-शनाप दामों में तैयार माल खरीदने के बजाय उसे हिन्दुस्तान के लाखों गाँवोंमें ही बाँटा जाय।

सवालों का जवाब देने के बाद गांधीजी ने कहा—"फ़ेहरिस्त-बंद जातों के कुछ मेम्बर मुझसे मिले थे। मैंने उन्हें बताया कि मैं लोगों को सच्ची बहादुरी सिखाने के लिये यहाँ आया हूँ। नामधारी ऊँची जातके लोग अभी तक अपने घरों को नहीं लौटे हैं, इसलिये आप भी मौत से डरें यह ठीक नहीं। अगर आप अपना डर छोड़ देंगे, तो कोई आपका दुश्मन न रहेगा। जब मुसलमान आपकी बहादुरी को पहचान लेंगे, तो

वे आप के दोस्त बन जायँगे। डरपोक के सब कोई दुश्मन हो जाते हैं, भले वे मुसलमान हों या और कोई। वह बहादुरी तलवार रखने और अपने दुश्मन को होशियारी से मार डालने से नहीं आती। उसे पानेका एक रास्ता यह है कि हम किसी को अपना दुश्मन न समझें और तलवार के डर से हार न मानकर मरने के लिये हमेशा तैयार रहें।"

इसके बाद गांधीजी ने लोगों के चाल-चलन को गिराने वाली, मुकामी समाज में फैली हुई बाल-विवाह, बेवाओं को फिर शादी करने की मनाही वग़ैरा बुराइयों का तफ़सील से ज़िक्र किया। आखिर में उन्होंने कहा—"अगर आप इन कमज़ोरियों को दूर कर दें, तो आप अपनी श्रद्धा (ऐतक़ाद) और इज़्ज़त के लिये मरने की ताक़त हासिल करेंगे।"

२८—२—'४७

गांधीजी ने कल शाम की प्रार्थना—सभा में नामशूद्रों के बारे में जो बातें कही थीं, उन्हींका सिलसिला जारी रखते हुये आज उन्होंने कहा—"कल मैं तालीम के सवाल पर कुछ नहीं कह पाया था। आप लोगों की तालीम के बारे में आज तक जो लापरवाही की गई है उसका सारा दोष ऊँची जात के हिन्दुओं पर मढ़ा जाना चाहिये। हिन्दू समाज ने जिन लोगों को जान-बूझ कर दबाया है, वे खुद अपनी तालीम की तरफ़ ध्यान देंगे ऐसी आशा करना सरासर ग़लत है। मुझे यह जानकर अफ़सोस हुआ कि आप में कुछ लोग ऐसे भी हैं जो आपको यह सिखाते हैं कि नामधारी सवर्ण हिन्दुओं से कोई अच्छी बात न सीखी जाय। मेरी राय में यह बहुत बुरा प्रचार है। इसलिये मैं उम्मीद करता हूँ कि यहाँ के नाम शूद्र भाई ज़मीन के बारे में और लड़के-लड़कियों की देख-भाल के बारे में पक्का भरोसा दिलायेंगे। मुझे यकीन है कि उस हालत में काफ़ी पछताने वाले हिन्दू ऐसे निकल आयेंगे, जो खुशी से इन भुलाये हुये बच्चों को तालीम देने की जिम्मेदारी अपने सिर लेंगे। सब नामशूद्र भाई ठक्कर बापा के पास अपना ज़रूरी वचन भेजदें और उनपर भरोसा करें। बाक़ी सब काम

वे करेंगे। मुझे आशा है कि काफ़ी मुक़ामी हिन्दू ऐसे होंगे जो अपने पैसे और योग्यता से इन बच्चों को पढ़ाने का शरीफ़ाना काम पूरा करेंगे।"

इसके बाद गांधीजी ने कहा—"मुझे कुछ वक्त के लिये बिहार जाना पड़ेगा। बिहार के हिन्दुओं ने वहाँ के मुसलमानों पर जो जुल्म ढाये हैं, उनके सामने नोआखाली या तिपराकी वारदातें फीकी पड़ जाती हैं। बंगाल के मुसलमानों ने मुझपर काफ़ी जोर डाला कि मैं बिहार जाऊँ। मैंने तो पहले उनकी सलाह नहीं मानी, क्योंकि मुझे आशा थी कि मैं यहाँ रहकर भी बिहार के हिन्दुओं पर बराबर असर डाल सकूँगा। लेकिन डॉ॰ सैयद महमूद के सेक्रेटरी मुझसे मिलने आये थे। वे डॉ॰ महमूद का एक लम्बा खत लाये थे। आपको यह जानना चाहिये कि डॉ॰ महमूद मेरे बहुत बड़े दोस्त हैं। वे खुद बिहार की वज़ारत में सुधार-मंत्री थे। मेरे सवाल के जवाब में डॉ॰ महमूद ने मुझे लिखा कि 'आप जल्दी-से जल्दी बिहार चले आइये। यहाँ की हालत जैसी अच्छी होनी चाहिये, वैसी नहीं है। बिहार में आप के मौजूद रहने से हालत सुधरेगी और मुसलमानों को फिर से यह यक़ीन हो जायगा कि आप हिन्दुओं और मुसलमानों का एकसाँ भला चाहते हैं। मैं डॉ॰ महमूद के खत का विरोध नहीं कर सकता। इसलिये मैंने बिहार वालों को एक ज़रूरी तार भेजा है। बहुत मुमकिन है, मैं जल्दी ही बिहार चला जाऊँ। उस हालत में मुझे नोआखाली और तिपराकी यात्रा को बीच में ही रोकना पड़ेगा। मैं कुछ ही दिन बाहर रहने की उम्मीद करता हूँ। इस अरसे में मैं यहाँ के हिन्दुओं और मुसलमानों के लिये यही सन्देश छोड़ जाऊँगा कि वे एक-दूसरे के साथ भाईचारे से रहें। ऐसा वे तभी कर सकते हैं, जब उनमें से हर एक अपनी भीतरी कमज़ोरियों को छोड़ देगा और बदला लिये बिना अपनी पवित्र चीज़के बचाव में जान तक क़ुरबान करने के लिये तैयार रहेगा।"

इसके बाद गांधीजी ने उस शाम को पूछे गये एक सवाल का जवाब दिया, जो बंगाल को हिन्दू बहुमत और मुस्लिम बहुमत वाले दो सूबों में

बाँटने के बारे में था। गांधीजी ने कहा—"बंगाली एक बार अपने सूबे के बँटवारे के खिलाफ़ लड़ चुके हैं और उसे नाजायज़ ठहराने में कामयाब हो चुके हैं। लेकिन कुछ लोगों की राय के मुताबिक़ अब शान्ति क़ायम करने के लिये ऐसे बँटवारे का हो जाना ही अच्छा है। मेरी ज़ाती राय हमेशा बँटवारे के खिलाफ रही है। लेकिन भाइयों का आपस में लड़ना और अलग हो जाना कोई ग़ैरमामूली बात नहीं है। पिछले वक़्तों में हिन्दुस्तान को बहुत सी बातें ज़बरदस्ती सहनी पड़ी हैं, लेकिन मैं बिलकुल दूसरी तरह बना हुआ हूँ।

"इसी तरह अगर हिन्दू, जिनकी तादाद सारे हिन्दुस्तान में मिलाकर ज्यादा है, हर एक को ज़बरदस्ती मिलाकर रखना चाहेंगे, तो मैं उसका भी मुक़ाबला करूँगा। मैं ज़बरदस्ती के बँटवारे उतना के ही खिलाफ़ हूँ, जितना कि जबरदस्ती के मेल के।

"गुज़रे ज़माने से अंग्रेज़ी राजकी तारीख कैसी भी रही हो, लेकिन इसमें ज़रा भी शक नहीं कि अंग्रेज़ हिन्दुस्तान बहुत जल्द छोड़ने वाले हैं। इसलिये हिन्दुओं और मुसलमानों को चाहिये कि अब वे शान्ति और मेलजोल से रहने का पक्का इरादा कर लें। दूसरा रास्ता घरेलू जंग का है, जो मुल्क के टुकड़े टुकड़े कर देगा। भगवान ही जाने, आगे उनका क्या होने वाला है। अगर सचमुच ही लोग सच्चे और पाक दिल से मिलकर किसी खास चीज़ को हासिल करने की कोशिश करें, तो सादे लफ़्ज़ों में यह कहा जा सकता है कि भगवान, जो दासों का दास है, उस खाहिश को खुद पूरा कर देगा।"

२–३–'४७

आज की सभा बाजपति के मर्द और औरतों से खचाखच भरी थी। वे यह शिकायत करने आये थे कि बाजपति को पैदल-यात्रा के प्रोग्राम में छोड़ दिया गया है। इस पर गांधीजी ने कहा—"मैं लौटने पर बाजपति भी आने की कोशिश करूँगा, लेकिन समय मुकर्रर नहीं कर सकता। मैं

नोआखाली या तिपराको, लोगों में दिली मुहब्बत क़ायम किये बग़ैर, नहीं छोड़ूंगा। तमाम वाजिब आशाओं के पूरा होने में वक़्त तो लगेगा ही। इतवार को मैं बिहार जाने की कोशिश कर रहा हूँ। मैं वहाँ ज़्यादा ठहरने की उम्मीद नहीं करता। मैं हाइमचर में प्रार्थना-सभा न कर सकूँगा, इसलिये चाँदपुर में ही करूँगा।"

स०—आपने हमारे अन्दर फैली हुई बहुतसी समाजी बुराइयों का ज़िक्र किया है। वे तो हैं ही, लेकिन अगर मर्द समाज में ज़रूरी सुधार न करना चाहें, तो हम औरतों को इस बारे में क्या करना चाहिये?

ज०—औरतें अपने-आपको मर्दों की ग़ुलामी या उनसे गिरी हुई क्यों मानें? ज़बानों में ऐसे मुहावरे मिलते हैं जिनसे औरत मर्द का आधा अंग ज़ाहिर होती है। और उसी दलील से, मर्द औरत का आधा अंग है। वे दो अलग-अलग हस्तियाँ नहीं हैं, बल्कि एक ही हस्ती के दो हिस्से हैं। अंग्रेज़ी ज़बान ने एक क़दम आगे बढ़कर औरत को मर्द का बेहतर आधा अंग कहा है। इसलिये मैं औरतों को सलाह देता हूँ कि वे तमाम अनचाही और भद्दी पाबंदियों के ख़िलाफ़ सिविल बग़ावत शुरू कर दें। रज़ामन्दी के साथ लगाई जानेवाली पाबन्दियाँ ही फ़ायदा पहुँचा सकती हैं। सिविल बग़ावत से कोई नुक़सान पहुँचना मुमकिन नहीं है। यहाँ यह तो पहले से ही मान लिया गया है कि यह मुक़ाबला सोच-समझकर और पवित्रता के साथ किया जायगा।

स०—जिनके प्रिय-जन (अक़रीबा) मारे गये हैं या जिनकी बरसों की कड़ी मेहनत से बनाई हुई घर-गिरस्ती बरबाद हो गई है, उनके लिये माफ़ करना और भूल जाना बहुत मुश्किल है। वे इस ख़याल पर किस तरह क़ाबू पा सकते हैं और उस बात को, जिसमें कुछ गुण्डे भी हैं, भाई चारे की निगाह से कैसे देख सकते हैं?

ज०—माफ़ करने और भूल जाने का एक रास्ता यह है कि आप बिहार का ध्यान करें, जहाँ नोआखाली और तिपरासे भी बुरी वारदातें

हुई हैं। क्या आप यह चाहते हैं कि यहाँ के मुसलमान वहाँ के हिन्दुओं के ज़ुल्मों का भयानक बदला लें? आप ऐसा नहीं कर सकते। अगर आप जंगलीपन की सबसे निचली सतह पर नहीं उतरना चाहते, तो आप को इससे माफ़ करने और भूल जाने का सबक़ सीखना ही होगा। साथ ही, आपको अपने को गिरा हुआ न समझना चाहिये। आप बहादुर बनें। माफ़ करना बहादुरी की शान और ख़ूबी है। आपको सच्चे बहादुर बनना चाहिये। सच्चा बहादुर वार नहीं करता, बल्कि वह सारे वार सब्र से हँसते हुये बरदाश्त कर लेता है। मुख़ालिफ़त को बेकार बनाने का यह सबसे सच्चा रास्ता है।

स०—बंगाल के तजवीज़शुदा बँटवारे के बारे में कुछ लोगों की यह राय है कि आबादी में किसी तरह की तबदीली किये बिना दो अलग-अलग हुकूमतें क़ायम कर दी जायँ। इस इन्तज़ाम से दोनों जातें अपनी-अपनी जगह शान्ति के साथ रहेंगी। इस तजवीज़ के बारे में आपको क्या इतराज़ है?

ज०—मेरे ख़याल में हुकूमत का बँटवारा उतना ही नामुमकिन होगा, जितना कि आबादी का तबादला। इसका नतीजा यह होगा कि दोनों हुकूमतें हथियारों से लैस होकर एक-दूसरी से तटस्थ हो जायँगी, जिससे सारी तरक्क़ियाँ ख़तम हो जायँगी। दोनों जातों के नेताओं को दोस्तों की तरह मिलकर मतभेदों को कम करना चाहिये और उन्हें सहन करना चाहिये। दूसरा कोई रास्ता जगलीपन का रास्ता होगा और हमें तीसरी ताक़त का गुलाम बना रखेगा।

(अंग्रेज़ी से)

गांधीजी की बिहार-यात्रा की डायरी

५-३-'४७

चूँकि सात बरस बाद गांधीजी की बिहार-यात्रा का यह पहला मौक़ा है इसलिये उनका स्वागत करने के लिये पटना के मशहूर मैदान पर प्रार्थना के समय एक बहुत बड़ा मजमा इकट्ठा हुआ था। बिहार कांग्रेस कमेटी के सदर प्रोफेसर अब्दुल बारी उन्हें मोटर पर प्रार्थना की जगह तक ले गये थे। बदस्तूर प्रार्थना के बाद गांधीजी ने कहा—"प्रार्थना सभा में पैदल आने के बदले मोटर पर आने के कारण मैं माफ़ी माँगता हूँ। इसका अक्स बिहार के लोगों पर पड़ता है, जिन्हें आज के तक़लीफ़-देह तरीक़े की जगह शान्त और गौरव भरे तरीक़े से स्वागत करना जानना चाहिये। आपको मेरे बुढ़ापे का ख़याल रखना चाहिये था और अपने नारों की आवाज़ों से, भले ही वह कितने ही अच्छे इरादे से क्यों न की गई हों, मुझे बरी रखना था। वे मेरे कानों के लिये बहुत ज़्यादा साबित हुईं। आपने प्रार्थना के वक्त जो मिसाल देने लायक़ शान्ति रखी उसके लिये मैं आपको बधाई देता हूँ।

"मुझे डॉक्टर सैयद महमूद का ख़त मिला था, जो उन्होंने अपने निजी सेक्रेटरी के हाथ भेजा था। उसी के कारण मैं बिहार आया हूँ। मैं अब तक यह मानकर अपने मनको समझा लिया करता था कि जिसे मैं अपनी सेवा के अधिकार से प्रेम के साथ 'अपना बिहार' मानता हूँ वहाँ मेरे यात्रा करने की जरूरत न होगी। मगर डॉक्टर महमूद के ख़त से मुझे ऐसा लगा कि यहाँ की हालत जैसी होनी चाहिये वैसी नहीं है। मैं जानता था कि बिहार के हिन्दुओं ने अपने मुसलमान भाइयों के साथ जो कुछ किया है वह नोआखाली के वाक़यात से कहीं बदतर है। मुझे आशा

थी कि आपने उसके हर्जाने की तमाम मुमकिन अदायगी कर दी होगी या अभी कर रहे होंगे, और वह उतनी ही बड़ी होगी जितना कि जुर्म था। इसका मतलब यह था कि अगर पछतावा सच्चा है तो आपको इस महान कथन की सचाई साबित करनी चाहिये कि 'पापी बड़ा तो पाप बड़ा'। मुझे उम्मीद है कि बिहार के हिन्दू यह कह कर अपनी नेकी बताने के मुजरिम न होंगे कि जो बिहारी एक पागलपन के झोंके में अपनी इन्सानियत भूल गये थे। वे गुण्डों के गिरोह के थे और उनके लिये कांग्रेस वाले ज़िम्मेदार नहीं ठहराये जा सकते। अगर आपने खुद की नेकी का यह रुख अख्तियार किया तो आप कांग्रेस को एक दीन-हीन पार्टी के रूप में गिरा देंगे। इसके उलटे, कांग्रेस का दावा है—और मैंने लंदन में गोल मेज़ परिषद् के सामने यह दावा दोहराया था—कि हिन्दुस्तान की तमाम संस्थाओं में कांग्रेस एक ऐसी संस्था है जो हक़ के साथ सारे हिन्दुस्तान की नुमाइन्दिगी करती है, चाहे फिर वह फ्रांसीसी हिन्दुस्तान हो, चाहे पुर्तगीज़ी या हिन्दुस्तानी रियासतों का। क्योंकि, कांग्रेस सेवा के अधिकार से न सिर्फ़ नामधारी कांग्रेस वालों या अपने से हमदर्दी रखने वालों की, बल्कि अपने दुश्मनों की भी नुमाइन्दिगी करती है। इसलिये कांग्रेस को तमाम फ़िरक़ों और दर्जों के लोगों की बुरी करतूतों के लिये ज़िम्मेदार होना ही पड़ेगा। सारे हिन्दुस्तान की इखलाक़ी, दुनियावी, और जिस्मानी हालत सुधारना उसका गर्व से भरा हुआ अधिकार होना चाहिये, ताकि वह अपने उस ऊँचे दावे के, जो कि वह अपने जन्म से ही करती आई है, लायक़ साबित हो। सचमुच तो, यह कहना ही ग़लत होगा कि इस दीवानेपन के उभाड़ में कोई एक भी कांग्रेसी शरीक नहीं रहा। यह कहना कि, मुस्लिम दोस्तों और भाइयों को बचाने के लिये कई कांग्रेसियों ने अपनी जान की बाज़ी लगा दी थी, उस जुर्म का कोई जवाब नहीं होता जो, नाराज़ और सताये हुये मुसलमान, बिहार के हिन्दुओं पर वाजिब तौर पर लगाकर, यहाँ के इस अपराध को इतिहास में बेजोड़ बताने में संकोच नहीं करते! अगर

मैं चाहूँ तो बता सकता हूँ कि तारीख में इन्सान की शकल के ऐसे भी पिशाचों के उदाहरण मौजूद हैं जिन्होंने बिहार के हिन्दुओं से भी बदतर जुर्म किये हैं। मगर मैं बराबरी करने का अपराधी बनकर जुर्मों के भारीपन को सोने की तराजू से तौलना नहीं चाहता। इसके ख़िलाफ़ सचाई के साथ पछतावा करने वाला आदमी यह सोचकर भी कभी अपने मनको खुश नहीं करना चाहेगा कि मैं अपने पहले के लोगों के बराबर बुरा नहीं हूँ। अच्छा काम करने और सेवा के कामों में अपने पहले के लोगों व अपने पहले के कामों से आगे बढ़ने में माकूल होड़ ज़रूर हो सकती है। इसलिये मुझे यह देखकर अफ़सोस हुआ है कि हिन्दुस्तान के हर हिस्से में ऐसे अविचारी हिन्दू मौजूद हैं जो झूठे तौर पर मानते हैं कि बिहार के कारनामों से नोआखली जैसे दंगों का फैलना रुक गया है। मैं उनको ज़ोरदार शब्दों में याद दिलाना चाहता हूँ कि विचार करने का यह तरीक़ा बरबादी और गुलामी का है, आज़ादी और बहादुरी का हर्गिज़ नहीं। इन-सान का यह विश्वास बुज़दिली का है कि जिस तरह का वहशीपन यहाँ दिखाया गया इससे कभी भी तहज़ीब या मज़हब की रक्षा हो सकती है, या आज़ादी को बचाया जा सकता है। मैंने हाल में जो जानकारी खुद हासिल की है उससे मैं कह सकता हूँ कि, जहाँ एक ओर बुज़दिली होती है वहाँ दूसरी ओर क्रूरता मौजूद रहती है। इसलिये नोआखाली का बदला लेनेका तरीक़ा यह सीखना है कि. किस तरह उन वहशियाना कारनामों की नक़ल न की जाय जो नोआखाली में संभव हुये; और, किस तरह वहशीपन का जवाब इन्सानी बहादुरी से दिया जाय जो, बदले का ज़रा भी विचार किये बिना और अपनी इज्ज़त की बाबत किसी भी तरह का सम-झौता किये बिना, मरने की दिलेरी में होती है। मैं आपको, और आपके ज़रिये सारे हिन्दुस्तान को, चेतावनी देता हूँ कि अगर आप सचमुच हिन्दुस्तान को लफ्ज़ के हर मानी में आज़ाद देखना चाहते हैं तो आप को वहशियाना तरीक़ों की नक़ल नहीं करनी चाहिये। जो इस तरह के

रवैये अख्तियार करेंगे उन्हें मालूम होगा कि हम हिन्दुस्तान की मुक्ति के दिन को रोक रहे हैं।"

६–३–'४७

आज गांधीजी प्रार्थना के मैदान तक पैदल गये। राह में स्त्री स्वयं-सेविकायें क़तार बनाकर खड़ी थीं। गांधीजी पूरी तरह शांत थे। भीड़ भी शांत हो गई थी। गांधीजी ने प्रार्थना के बाद की सभा में कहा—

"मैं आप लोगों को और सूबा कांग्रेस कमेटी के सदर बारी साहब व उनके साथियों को बधाई देता हूँ कि शाम को कामयाबी के साथ शांति रखी गई। रामधुन के वक्त, कुछ तालियाँ बेजोड़ रहीं। आपको सुर और ताल पूरी तरह से मिलाने की मश्क करनी चाहिये।

"मुझे एक चिट्ठी मिली है। उसके ज़रिये मुझे याद दिलाई गई है कि कल होली है और लोग जानना चाहेंगे कि उसे मनाने के तरीक़े के बारे में मेरी क्या राय है। मेरे मन में कोई शक नहीं कि होली जैसा धार्मिक त्योहार रंगरेलियों और मस्ती से नहीं मनाना चहिए। उसे ईश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ने की अनुशासन भरी कोशिशों में बिताना चाहिये।

"एक वक्त था जब हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे की बाजू में शान्तिपूर्ण पड़ोसियों की तरह रहते थे। अगर हालतें इतनी बिगड़ गई हैं कि अब वे एक-दूसरे को दोस्त की निगाह से नहीं देख सकते तो, कम से कम, दुश्मनों की तरह तो बर्ताव नहीं करना चाहिये। मुसलमानों में डर फैला हुआ है कि होली के मौके पर फिर से उनपर हमला न कर दिया जाय। ताज्जुब की बात है कि, मुझे उनसे वही बातें सुनने को मिल रही हैं जो मैंने नोआखाली और तिपरा के हिन्दुओं से सुनी थी। मुझे नोआखाली के माफ़िक़ ही पटना में भी वही कहानियाँ सुनने पर शर्म है। इसलिये मैं अपने बिहार के मुसलमान भाइयों से वही कहता हूँ जो मैंने नोआखाली के हिन्दुओं से कहा था, कि वे इन्सान का सारा डर छोड़कर खुदा पर भरोसा करें। मगर मैं जानता हूँ कि यह इन्तेहाई सलाह है।

"वन्देमातरम्., जय भारत या जय हिन्द के नारे आज मुसलमानों में खौफ़ पैदा करते हैं। क्या भारत की जय के नारे का अर्थ होगा, मुसलमान का क्षय? शर्म की बात है कि हालतें इस तरह की कर दी गईं। मैं बहुत से मुस्लिम लीगी दोस्तों से मिला हूँ। मुझे लगा है कि उन्होंने मेरे सामने अपने दिल खोल दिये हैं। उन्होंने पूछा है कि क्या सचमुच बिहार जैसे सूबों में मुसलमानों को न रहने दिया जायगा? डॉक्टर सैयद महमूद जैसे मुस्लिम दोस्त कांग्रेस में हैं उन्होंने भी मौजूदा हालतों पर अपनी बेचैनी ज़ाहिर की है। भाई के ज़रिये भाई का इस तरह आतंकित किया जाना अगर सच है तो इसे मैं सह नहीं सकता। क्या सचमुच पागल-पन के एक कारनामे का बदला आप दूसरे कारनामे से चुकाना चाहते हैं? ऐसी हालत में हिन्दुस्तान सिर्फ़ खून के समुद्र में डुबाया जा सकता है।

"मेरा पक्का भरोसा है कि अगर हम इसकी उलटी हालत पैदा करने का निश्चय करालें तो हमारी यह हालत कभी न रह सकेगी। मेरी आशा औरतों पर लगी है। मैं हमेशा कहता आया हूँ कि वे अहिंसा और निज की कुरबानी की जीती-जागती मूर्त्ति हैं। कुरबानी के बगैर अहिंसा कभी सच्ची सूरत में कामयाब नहीं हो सकती। मैं चाहता हूँ आपमें से हरएक इस तरह होली मनाये कि एक-एक मुसलमान महसूस करे कि, हिन्दुओं ने सिर्फ़ उनपर किये हुये जुल्मों का प्रायश्चित किया है, बल्कि उनके लिये इतना प्रेम भी इकट्ठा कर लिया है कि वह उनके पहले के जज़बात से ज्यादा पड़ता है। अगर होली पुराने रिश्तों को इस तरह फिर से क़ायम करने की कोशिशों से मनाई जाती है तो, सचमुच, एक सच्चे धार्मिक त्योहार का मनाया जाना साबित होगा।

"मैं एक बात और कहना चाहता हूँ। मुझे आशा है कि जहाँ कहीं मेरी आवाज़ पहुँचेगी वहाँ न्याय किया जायगा। मुझे बताया गया है कि अब भी हिन्दू घरों में मुस्लिम औरतें मौजूद हैं। अगर यह सच हो और, अलबत्ता, अगर ऐसी औरतें अब भी ज़िन्दा हों, तो मैं चाहूँगा कि उनमें

से हरएक अपने घर वापस भेज दी जाय। शरारत करने वालों को सच्चा प्रायश्चित्त दिखलाना चाहिये और हर एक हिन्दू को उन्हें समझाना अपना फ़र्ज़ मानना चाहिये कि वे प्रायश्चित्त करें और अपनी करतूतों के लिये हिम्मत के साथ सज़ा भोगें। अगर यह उनके लिये बहुत ज्यादा हो तो, कम-से-कम, वे उन औरतों को मेरे या राजेन्द्रबाबू के पास पूरी हिफ़ाज़त के साथ भेज दें।

"हिन्दुओं का ऊपरी हमदर्दी ज़ाहिर करना या सताये हुये लोगों को रुपये-पैसे देकर बदला चुका देना काफ़ी न होगा। सचमुच ज़रूरत इस बात की है कि उनके दिल शुद्ध हो जायें। उनके दिल में जो नफ़रत और वेपरवाही भर गई है उसकी जगह प्रेम का राज हो, ताकि उसकी दमक के तले हरएक मुस्लिम मर्द, औरत और बच्चा अपने आपको पूरी तरह महफ़ूज़, और बिना किसी विघ्न-बाधा के अपने धार्मिक रिवाजों को बरतने के लिये आज़ाद महसूस कर सके। मैं बिनती करता हूँ कि हम सब मिल कर होली को दोनों समाजों के बीच इस रिश्ते को क़ायम करने का मौक़ा बनायें।"

७-३-'४७

गांधीजी ने आज शाम को अपनी तक़रीर इस तरह शुरू की—

"प्रार्थना के मैदान को रवाना होने के पहले मैंने थोड़ा सा आराम किया था। दिन का मेरा सारा वक़्त हिन्दू और मुसलमान मित्रों की लाई हुई रिपोटों को सुनने में ही बीता था उनमें से कोई भी मुझे विश्वास नहीं दिला सका कि हालत पूरी तरह से पहले के माफ़िक ठीक हो गई है। इससे मेरा मन थक गया था और इसीलिये आराम की ज़रूरत हुई।

"स्थितप्रज्ञ (जिसका ज्ञान अडिग हो गया हो) का गीता में बताया हुआ आदर्श हमेशा मेरे सामने रहता है। मैं उस आदर्श तक पहुँचने के लिये लगातार कोशिश किया करता हूँ। दूसरे मेरे बारे में कुछ भी कहें मैं जानता हूँ कि अभी मैं उससे बहुत दूर हूँ। जब कोई उस हालत

पर पहुँच जाता है तब उसका विचार ही ऐसी ताक़त से भर जाता है कि, उससे उसके आस-पास के लोग बदल जाते हैं। मगर वह ताक़त अभी मुझमें कहाँ है ? मैं सिर्फ़ इतना ही कह सकता हूँ कि जिस मिट्टी के और लोग बने हैं उसीका बना हुआ एक मामूली आदमी मैं भी हूँ। मैं सिर्फ़ उस ऊँचे आदर्श को पाने की लगातार कोशिश किया करता हूँ, जिसे गीता ने सारी मनुष्य जाति के सामने पेश किया है।

"आज रात को मेरे विचार सिर्फ़ उन भाई-बहनों तक पहुँचे हैं जिनका दंगाइयों पर कोई सीधा असर नहीं है। इस कारण मैं संजीदगी के साथ सोच रहा हूँ कि क्या मुझे नोआखाली के तरीक़े पर ही यहाँ के गाँव-गाँव में भी पैदल घूमना नहीं चाहिये, ताकि मेरे विचारों में जो थोड़ी-बहुत ताक़त है वह दूरसे-दूर के गाँववासी तक, जिसने अपने मुसलमान भाई के साथ बुरा बर्ताव किया है सीधी पहुँच सके।

"बिहार तुलसीदास की रामायण की भूमि है। कोई बिहारी चाहे जितना जाहिल और ग़रीब हो, उसकी आवाज़ हमेशा उस शक्तिमान महाकाव्य (रज़मिया नज्म) के संगीत से गूँजती रहती है। वे जानते हैं कि क्या पाप और क्या पुण्य होता है। उनसे जो काले कारनामे हुये हैं वह भयानक रूप में बड़े हैं। तो क्या उनका प्रायश्चित भी उतना ही बड़ा नहीं होना चाहिये ? एक कहावत है कि 'पापी बड़ा तो पाप बड़ा।' जिन्होंने आपके हाथों मुसीबत भोगी हैं उनके पास आप को इसी भावनासे जाना चाहिये और उनके साथ न्याय और ठीक बर्ताव करना चाहिये।

मज़हबी व फ़ौजी तालीम और—रोमन लिखावट

[एकसे दूसरे ज़माने में गुज़रने के इस वक्तपर जो यह तीनों मसले जनता के मन को परेशान कर रहे हैं, उनपर हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के सेक्रेटरी श्री० ई० डब्ल्यू० आर्यनायकम् को पत्र लिखते हुये गांधीजी ने अपनी पक्की राय ज़ाहिर की है। चूँकि तीनों ही विषय आज़ाद राष्ट्र की हैसियत से हमारी बढ़ती के लिये कतई ज़रूरी हैं, इसलिये हम उस ख़त को यहाँ शाया कर रहे हैं। मौलाना आज़ाद ने मुलाक़ात के दरमियान जो कुछ कहा था उसके ज़रूरी हिस्से और सदर सलाहकार बोर्ड की सिफारिशें भी इसी अंक में दूसरी जगह दी जा रही हैं। संपादक]

"आप के थोड़े से वक्त के लिये आने और आपसे आम दिलचस्पी की कमसे कम बातें करने पर भी मुझे सिर्फ ख़ुशी की बनिस्बत कुछ ज़्यादा हासिल हुआ है।

"आप ने मुझे 'हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड' की एक कतरन दी थी। उस में तालीमपर मौलाना आज़ाद के विचारों का लेखा दिया गया है। उस लेखा को सही मानकर मैं थोड़े और साफ़ शब्दों में कहता हूँ कि वह तालीमी संघ द्वारा अख्तियार किये हुये तरीके से मेल नहीं खाता। हिन्दुस्तान गाँवों में बसा है, थोड़े से पच्छिमी ढंग के शहरों में नहीं, जो कि एक विदेशी ताक़त के गढ़ हैं।

" मैं नहीं मानता कि सरकार मज़हबी तालीमसे सम्बन्ध रख सकती है, या उस तालीम को निभा ही सकती है। मेरा विश्वास है कि मज़हबी तालीम पूरी तरह से सिर्फ़ मज़हबी अंजुमनों का ही विषय होना चाहिये। धर्म और नीति को मिलाना नहीं चाहिये। मेरे विश्वास के मुताबिक़ बुनियादी नीति सब धर्मों में एक ही है। बुनियादी नितिकी तालीम देना

बेशक सरकारका काम है। धर्म या मज़हब से मेरा मतलब बुनियादी नीति नहीं, बल्कि वह है जिसका सिक्का लगाकर अलग-अलग जमातें बनाई जाती हैं। हमने सरकारी मददयाफ्ता मज़हब और सरकारी मज़हब के बहुत नतीजे सहे हैं। जो समाज या गिरोह अपने धर्म की हिफ़ाज़त के लिये किसी हिस्से में या पूरी तौरपर सरकारी मदद पर मुनहसिर रहता है, वह उसके लायक़ नहीं होता और इससे भी बेहतर, उसका नामके लायक़ धर्म ही नहीं होता। मेरे सामने यह सचाई बिलकुल साफ़ है और इसकी ताईद में उदाहरण देने की ज़रूरत नहीं है।

"लेखाका ध्यान खींचने वाला दूसरा विषय उर्दू और नागरी लिखावटों के बदले रोमन लिखावट को अख्तियार करने की बाबत है। यह तजवीज़ कितनी भी मन हरने वाली दीखती हो और हिन्दुस्तानी फ़ौजियों के बारे में कुछ भी सच क्यों न हो, मेरे खयाल से इस तरह की बदलाहट एक घातक ग़लती होगी। और इसका नतीजा हमारे लिये कड़ाह से निकलकर आग में गिरने के समान हो जायगा। इस सम्बन्ध में मैं चाहूँगा कि आप मेरा पिछली २१ जनवरीका बयान, जो अखबारों को दिया गया था, पढ़ लें।

"जिस तीसरी चीज़ से मुझे दुःख हुआ वह फ़ौजी तालीम की बाबत है। मैं ख़याल करता हूँ कि सारे देश के लिये फ़ैसला करने के पहले हमें बहुत वक्त तक रुकना होगा। वरना, मुमकिन है कि, हम दुनिया के लिये असीस के बदले विपदा बन जायें। नेता बनाए नहीं जाते, वे पैदा होते हैं। क्या सरकार को पूरी आज़ादी मिलने के भी पहले इस बाबत जल्दी करनी चाहिये? इसलिये, सदर सलाहकार बोर्ड ने जिस तरह की व्यापक सिफ़ारिशें की हैं, उन से मुझे अचरज हुआ है।"

(अंग्रेज़ी से)

मौलाना आज़ादकी मुलाक़ात

फरवरी १९, १९४७ के "हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड" में मौलाना आज़ाद की मुलाक़ात का जो लेखा शाया हुआ था उस के कुछ हिस्से ये हैं:

स्कूलों में मज़हबी तालीम देने की बाबत मौलाना आज़ाद ने कहा—"हिन्दुस्तान में दूसरे मुल्कों की बनिस्बत मज़हब पर ज्यादा ज़ोर दिया जाता रहा है और अब भी दिया जाता है। न सिर्फ़ हिन्दुस्तान की पुरानी परंपरायें, बल्कि लोगोंका आजकल का मिजाज़ भी मज़हबी तालीम को मामूली तालीम में शामिल करनेका फ़ैसला कर ले, तो यह ज़रूरी मालूम होता है कि वह मज़हबी तालीम अच्छे-से-अच्छे ढंगकी हो।

"हिन्दुस्तान की ख़ानगी संस्थाओं में अक्सर जो मज़हबी तालीम दी जाती है, वह विचारों को फैला देने और एक-दूसरे को बर्दाश्त करने की अच्छी भावना पैदा करने के बदले ठीक उलटा नतीजा दिखाती है। मुमकिन है कि सरकारी देख-रेख में अलग-अलग नामों से पुकारे जाने वाले धर्मों की तालीम भी ख़ानगी संस्थाओं की अपेक्षा ज्यादा उदार भाव से दी जा सके। सारी धार्मिक शिक्षाका उद्देश्य मनुष्यों को ज्यादा बर्दाश्त करने वाले और उदार विचारों के बनाना होना चाहिये। मेरा ख़याल है कि ख़ानगी संस्थाओं पर छोड़ देने के बदले अगर सरकार इस सवाल को अपने हाथों में ले-ले, तो मक़सद ज्यादा पुरअसर तरीक़े पर हल हो सकता है। इस सवाल पर मैं जल्दी ही सरकार का फ़ैसला बताऊँगा।

"दूसरा सवाल, जिस के बारे में मैं अपनी राय ज़ाहिर करना चाहता हूँ, मिशनरी सोसाइटियों के तालीमी कामकी बाबत है। इस में कोई शक नहीं कि मिशनरी सोसाइटियों ने मौजूदा ज़माने की तालीम फैलाने और निगाह को बढ़ाने में बहुत अहम हिस्सा अदा किया है। यह सिर्फ़ हिन्दु-

स्तान के बारेमें ही नहीं, बल्कि पूरब के दूसरे देशों के बारेमें भी सही है।

"बीते हुये ज़माने में मिशनरियों के किये हुये काम की क़ीमती मिसालों के होते हुये, कोई सबब नहीं कि आगे भी उनके इनसान की भलाई के उसी तरीक़े पर किये जाने वाले कामकी उतनी ही क़द्र न की जाय। सिर्फ़ एक विषय में कभी-कभी दिक्क़तें खड़ी होती हैं। वह है धर्म बदलाने का और, खासकर, भारी संख्या में एक साथ धर्म बदलाने का। इस सवाल पर दुनिया के विचार बहुत बदल गये हैं। ज़िम्मेदार मिशनरी खुद इस नतीजे पर पहुँच गये हैं कि भारी संख्या में एक साथ धर्म बदलाने से सचमुच धर्म नहीं बदलता। ईसा ने खुद आत्मा के बपतिस्मापर, न कि पानी से बपतिस्मा देने पर, ज़ोर दिया था। मिशनरी ईसा की उस भावना के प्रति वफ़ादार होंगे, अगर वे गिरजा पर विश्वास का मत मनवाने के बदले इन्सान के बीच उन के सँदेशे का प्रचार करें। अगर तमाम मिशनरी सोसाइटियाँ यह समझदारी का रुख अख्तियार कर लें तो कोई सबब नहीं कि आज़ाद हिन्दुस्तान उन की खिदमतों को, जिन्हें देने का उन्हें हक़ है, मंजूर करने में आगा-पीछा करे।"

ईश्वर अनन्य भक्ति का प्रेमी है

अगर मैं नोआखाली, बिहार और पञ्जाब को भूल जाऊँ तो भारत की सेवा कोई भी नहीं कर सकता। मैं ईश्वर का सेवक हूँ। मैं ईश्वर के आदेश के बिना कोई भी कार्य नहीं करता। समय पूरा होने पर आप लोग मेरे कार्य के स्वरूप को समझेंगे। ईश्वर मुझे जहाँ कहीं भेजता है, वहाँ मैं अपने कर्तव्य का पालन करता हूँ। जहाँतक कुरान और वेद का सम्बन्ध है, मुझे यह कहना है कि वेद चिरकाल से है। यही स्थिति उपनिषदों की भी है। लोग वेद और उपनिषदों को अच्छी तरह नहीं जानते। कुछ धर्म-ग्रन्थों में दोष आ जाने का कारण यह है कि वे बहुत समय बाद लिखे गये। हिन्दूधर्म बहुत विशाल धर्म है और उसमें सहिष्णुता तथा दूसरों को पचाने की अपार शक्ति है। ईश्वर सर्वव्यापक है। वह अनन्य उपासना

का प्रेमी है, चाहे वह उपासना किसी भी रूप में हो। अतः कुरान की आयत के पाठ का विरोध करना अधार्मिक तथा हिन्दुत्व के विरुद्ध है।

प्रार्थना सभा में गांधीजी का भाषण

पाकिस्तान एक ऐसा देश होगा जहाँ जहर लहराता रहेगा

उन्होंने लोगों को स्मरण दिलाया कि एक धर्म को दूसरे से श्रेष्ठ समझना मूर्खता है मुझे विश्वास है कि हाल में हुई घटनाओं का कारण आज देश में फैली घृणा का वातावरण ही है। यदि आप लोग तूफान के समय शान्त रहें तो आपकी शक्ति ही बढ़ेगी।

मैंने ऐसी कल्पना भी नहीं की थी कि देश इतना अधिक जागरित हो गया है। देश से मेरा मतलब कुछ नगरों से नहीं वरन् भारत के ७ लाख गाँवों से है जहाँ बहुसंख्यक भारतीयजन रहते हैं। गांधीजी ने उपस्थित जनसमूह से अपील की कि वे एक बार पुनः मेरी पुकार सुनें, परन्तु ऐसा वे तभी करें जब इसके प्रयोगको समझलें।

महात्मा गांधी ने उपस्थित जनसमूह से गृहयुद्धकी घटनाओं के लिए क्षमा करने, उनको भूल जाने तथा नोआखाली, बिहार और पंजाबकी पाशविक घटनाओं के लिए द्वेषभाव न रखनेको कहा। आपने कहा कि मेरा चरखा और अहिंसा में दृढ़ विश्वास हो गया है।

गांधीजी ने कहा कि समस्त भारत पाकिस्तान हो सकता है यदि पाकिस्तान के समर्थक सभी भारतीयों को अपना भाई समझें। यदि हिन्दुस्तान का मतलब केवल हिन्दुओंका देश और पाकिस्तानका मतलब केवल मुसलमानोंका देश हो, तो पाकिस्तान एक ऐसा देश होगा जहां जहर लहराता रहेगा। मेरा कल्पित देश वही होगा जो प्रेमकी नदी द्वारा सिंचित हो।

एशियाई सम्मेलनमें महात्मा गांधीका भाषण

इस अवसरको याद रखनेका आग्रह करते हुए मैं आशा करता हूँ कि आप लोग सत्यके भवनका निर्माण करनेका यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे क्योंकि

सत्य ही ईश्वर है। एशियाई राष्ट्रोंके प्रतिनिधि यहां क्यों एकत्र हुए हैं? क्या उनका उद्देश्य युरोप, अफ्रीका या अन्य देशों के प्रति युद्ध छेड़ना था? मैं जोर देकर कहूंगा कि बात यह नहीं है। भारतका यह उद्देश्य नहीं है और भारत अहिंसा द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उपरान्त संसार के अन्य देशोंको दबानेकी बात सोचे तो मुझे अपार दुःख होता। यद्यपि युरोपीय राष्ट्रोंने एशियाकी विभिन्न जातियों को अबतक बहुत चूसा है तथापि अगर उनका दमन करने की भी बात सोची जाय तब भी मुझे बुरा लगेगा। यह बड़े दुःख की बात होगी। मेरा सुझाव है कि यह सम्मेलन प्रतिवर्ष या दो या तीन सालपर हुआ करे। अगर आप लोग मुझसे पूछें कि कहाँ हो तो मैं कहूंगा कि भारत में ही हुआ करे। आप लोग कृपा करके इस भारत सम्बन्धी पक्षपात के लिए मुझे क्षमा कीजियेगा।

भारतने सभ्यता भुला दी है

देशकी वर्तमान स्थिति के बारे में आपने कहा कि आज हम लोग स्वतन्त्रता के द्वारपर पहुँच गये हैं पर जंगलीपनने हमें ग्रस लिया है। अब हम लोग सभ्य नहीं रह गये हैं। आप लोग कृपया यह गुण ग्रहण करके यहां से मत जाइयेगा। हम लोग अपना कर्तव्य करते जा रहे हैं और फल ईश्वरपर छोड़ देते हैं। जब नेहरूजी ने मुझसे इस सम्मेलन में उपस्थित होनेको कहा तब पहले मैंने उनके प्रस्ताव का विरोध किया। लार्ड माउण्टबाटन ने मुझसे कहा कि एशियाई सम्मेलन के सिलसिले में आपको दिल्ली बुलाने का श्रेय मुझे है। इसपर मैंने उनसे कहा कि मैं आपका बन्दी हूँ।